



R. S.

गुरुत्र ह्या गुरुविष्णु देवमहेश्वरः  
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः



वर्ष ५ | शाका सं० १८८० मार्च ५६ | तरंग १

## गुरु की स्तुति और बंदना

गुरु की आस भरोस है मन में, आठ पहर गुरु सेवा करूं।  
आवा गमन का संकट मेटूं, नहीं जन्म नहीं जन्म मरूं ॥  
लौ लग रहे चरण की लाए, साँस साँस गुरु का ध्याना।  
यही विवेक है यही चतुराई, यह विद्या है यह ज्ञाना ॥  
गुरु मेरे परम पुरुष करतारा, न्यायक घटघट के बासी।  
सत चित्त आनन्द प्रेम की मूरत, सहज सार अति सुखरासी ॥  
चेतन छवि छाई नैनन में, छवि का छाया संसारा।  
अन्तर गुरु हैं बाहर गुरु हैं, सार सार के निज सारा ॥  
शब्द गुरु हैं सुरत गुरु हैं, परम तत्व गुरु रूप लखूं।  
पीऊँ गुरु का नाम सुधारस, परम विवेक प्रसाद चखूं ॥  
नैनों में गुरु मन में सतगुरु, तन में गुरु का विस्तारा।  
साँस गुरु मेरे जान गुरु मेरे, प्राण के गुरु हैं आवारा ॥  
मैं हूँ चरण कमल का भौरा, बास सुवास की प्यास घनी।  
राधास्वामी चरण शरण बलिहारी, गुरु हैं पूरण पुरुष धनी ॥



## ‘शिव’ का पाँचवाँ वर्ष ।

इस अंक से ‘शिव’ का पाँचवाँ वर्ष प्रारम्भ होता है । गत चार वर्षों में जो उत्तमोत्तम बचन पुस्तक रूप में पाठकों के भेंट किये गये हैं उनसे ज्ञात होगा कि इस आधुनिक युग में वे पुस्तकें कितनी लाभदायक हैं । वर्तमान समय की आवश्यकता तुम्हारे ही उचित सामिग्री प्रकाशित की जाती है ताकि जो लोग उन्हें पढ़ें और थोड़ा सा भी मनन करें, वे अपने जीवन को मचाई के साँचे में ढाल सकें । वर्तमान युग कर्म युग है । करो करो की पुकार चारों ओर से सुनाई दे रही है । उस करो या कर्म को सुन्दर सुव्यस्थित तथा सुखकर बनाकर जीवन को आनन्द पूर्वक बिताना ही जीवन का सुख है और यही शिक्षा वर्तमान युग के संतों की है जो ‘शिव’ द्वारा प्रत्येक मास आप को घर बैठे प्राप्त होती रहती है

इस वर्ष काफी घाटा है मगर परमसंत दयाल फकीर चन्द जी महाराज ने उसको चालू रखने की ही आज्ञा दी है ताकि अनुभव पूर्ण बचन लोगों तक पहुँचते रहें और लोगों का कल्याण हो सके ।

इस वर्ष यदि हमारी आर्थिक कठिनाई दूर होगई तो बहुत उच्च कोटि की लाभदायक सामिग्री प्रकाशित करने का विचार है । अतः हम ‘शिव’ के प्रेमियों से निवेदन करते हैं कि:—

(१) वे अपना वार्षिकमूल्य तुरन्त मनीआर्डर द्वारा भेजने की कृपा करें ।

(२) कम से कम दो दो ग्राहक और बनादें ताकि यह अपने पैरों पर खड़ा होजाय ।

हमारी नव वर्ष की यही हार्दिक प्रार्थना है कि मातृक सबका कल्याण करे ।

स० सम्पादक



## प्रस्तावना

इसमें विशेष रूप से ऊँचे दर्जे के सत्संगियों और सुरत शब्द योग में उन्नति किये हुये अभ्यासियों के लाभार्थ ध्यान देने और अमल करने योग्य बचन लिखे गये हैं। जो ध्यान पूर्वक अध्ययन करेंगे, सचाई के समझने में उनको इनसे मदद मिलेगी और वे लाभ उठायेंगे—

### कुंडलिया

- (१) संत शरण सतगुरु बचन, उपजै प्रेम प्रतीति।  
प्रेम भक्ति मारग गहै, यही साध की रीति ॥
- (२) यही साध की रीति है, क्षीर नीर निरवार।  
हंस चाल का चलन गह, लहे बचन का सार ॥
- (३) लहे बचन का सार, दूध से माखन काढ़े।  
छाछ पिपै संसार, आप माखन चख बाढ़े ॥
- (४) बचन बचन में भेद है, बचन बचन में भाव।  
सोई बचन सराहिये, जो मुक्ति बतावै दाव ॥
- (५) मन में करै विचार नित, वही बात है नीति।  
संत शरण सतगुरु बचन, उपजे प्रेम प्रतीति ॥

शिवब्रतलाल वर्मन

एम० ए०



## भूमिका

बचन सार का यह तीसरा भाग है। पहिले भाग में प्रारम्भ करने वालों के लिये शिष्टाचार की शिक्षा के साथ साथ अध्यात्म की ओर संकेत किया गया है। साधारण रूप से सुरत शब्द योग का भेद बतलाया गया है। दूसरे भाग में कुछ ऊँचे दर्जे के बचन आये हैं जो बीच के दर्जे के अभ्यासियों के लिये लाभदायक हैं। इस तीसरे भाग में उनसे भी ऊँचे बचन लिखे गये हैं। जो लोग सुरत शब्द योग के साधन की रुकावटों से जानकार हैं और अपने अन्दर दो एक सीढ़ी तय कर चुके हैं, वह इससे लाभ उठा सकते हैं।

सुरत शब्द योग सम्पूर्ण आध्यात्मिक क्रियाओं का तत्व और सार है। यह इतना सरल और साथ ही आनन्ददायक साधन है कि जिसको स्त्री, पुरुष, युवा, बृद्ध, अमीर, गरीब, सन्यासी और गृहस्थी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक भय के बिना सुगमता से कर सकता है और थोड़े ही दिनों के साधन में उसका लाभ स्वयं देख सकता है। पहिले जिज्ञासा और तीव्र लालसा की आवश्यकता है। यह समय और तरह का है। जो बीत गया वह समय और था। प्राचीन समय की मसलहते (रहस्य) और आवश्यकतायें भिन्न थीं। वर्तमान समय की दशा दूसरी है। यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो इस कलियुग में मनुष्य के सांसारिक कार्य इतने बढ़ गये हैं कि उसको आत्मिक ज्ञान की ओर ध्यान देने का न अवकाश मिलता है और न हार्दिक लगाव है। जिनको अपने पिछले जन्मों के संस्कार के कारण कुछ परमार्थ की कमाई करने की इच्छा भी होती है तो वह कठिन साधनों का नाम सुनकर कानों



पर हाथ रख जाते हैं। इस तरह लोगों की अधिक संख्या आत्मिक ज्ञान के लाभ से वंचित रह जाती है। यह दशा देख कर संतों ने इस सहल नुसखे का प्रचार आवश्यक समझा ताकि कम से कम अधिकारी लोग आत्मिक ज्ञान के लाभ से अनजान न रहने पावें और सुगमता से अपना काम बना सकें। न इसके संयम कठिन हैं, न किसी प्रकार के बंधनों की आवश्यकता है। सुबह शाम प्रत्येक व्यक्ति थोड़ा समय निकाल सकता है। वह घर में रहे, गृहस्थी के काम धंधे करे, नौकरी चाकरी, पेशा और कर्तव्य कर्म को भी करे, छोड़े नहीं। हाँ, पहिले कुछ थोड़ा सा समय नित्य प्रति किसी पूर्ण पुरुष के सत्संग के लिये निकाल ले। सत्संग करते करते जब चित्त में पूर्ण विश्वास आ जाय कि यह मालिक के मिलने का सच्चा रास्ता है तो अभ्यास की तरकीब (क्रिया) सीखकर साधन में लग जाय। जब एक आध सप्ताह के ही अभ्यास में अन्तरीय रस आने लगेगा, वह आष ही धीरे धीरे उन्नति करता चला जावेगा। ज्यों ज्यों स्वयं रसका अनुभव बढ़ता जायगा, त्यों त्यों हालत भी बदलती जायगी और शान्ति अवश्यमेव प्राप्त हो जायगी। जिस प्रकार हकीम के काढ़े आदि की जगह छोटी गोलियों ने ले ली है वैसे ही कठिन साधनों के बदले अब सुरत शब्द योग के अमल को समयानुसार समझ लिया गया है लेकिन कठिनता यह है कि अज्ञानी और आलसी जीव सत्संग में जाने से भी घृणा करते हैं। किसी को समय न निकलने का बहाना है, किसी को अपने मेल जोल बढ़ जाने का बहाना है। इस बहाने को किसी इद तक दूर करने के लिये “बचन सार” के भागों को क्रमानुसार चालू किया गया है। पढ़ने लिखने का शौक तो पढ़े लिखे मनुष्यों का स्वभाव है। अगर वह किसी कारण से घर



नहीं छोड़ सकते तो थोड़ा बहुत इनको तो पढ़ सकते हैं। जो अधिकारी हैं इनके पढ़ने से उनके विचार को गति मिलने की आशा है। वह कुछ न करें केवल मामूली ढंग से बचन सार के भागों को पढ़ लें। अगर बचन चित्त को भावे तो जीवन को साधन सम्पन्न बना लें। योग विद्या का छुपा हुआ संस्कार जो अधिकारियों के चित्त में दबा हुआ पड़ा है स्वयं उनको इस ओर आकर्षित करेगा। सत्यता अपना प्रभाव प्रगट किये बिना नहीं रह सकेगी और अगर वह अपने चित्त को थोड़ा भी आकर्षित पायें तो अपने ऊपर दया करके तुरन्त ही जीवन को अमली बनाने की चिन्ता करें। हर काम का समय होता है। समय और अवसर को जो मनुष्य हाथ से खो देता है वह पीछे अधिक पछताता है। यदि आत्म ज्ञान होने का समय आ रहा है ओर संस्कार जाग उठे हैं, तो उनको दबाना अत्यन्त गलती में दाखिल है। कौन जाने फिर ऐसा समय कब आवे और किस जन्म में आवे।

यह पुस्तकें ऐसे ही अधिकारियों के लिये लिखी जा रही हैं। गुरु सबका कल्याण करे।

शिवब्रतलाल



R. S.

# राधास्वामी मत प्रकाश

## वचन सार तृतीय भाग

### प्रथम वचन

किसी कुत्ते के मुँह में रोटी का टुकड़ा था। वह दातों से दबाये हुये पानी के सोते के निकट होकर जा रहा था। पानी में उसने अपनी परछाईं देखी। भूल और भ्रम में पड़कर उस मूर्ख ने उस परछाईं को रोटी समझा। उसके पकड़ने के लिये अपना मुँह खोला। परछाईं को तो क्या हाथ आना था, मुँह की रोटी गिर पड़ी। पानी गहरा था यह भी चली गई। इसी प्रकार मनुष्य परछाईं के भ्रम में पड़कर अपनी सच्ची हालत को भी खो बैठता है। क्या यह सच्ची बात नहीं है? असलियत मनुष्य में है, मनुष्य के बाहर नहीं है। उसी की परछाईं बाहर दिखाई आती है और मनुष्य उसके भ्रम का शिकार होकर दुःख और क्लेश भोगता है और अपने आप को भूल कर भ्रम से मारा जाता है। इसी कारण से सत पुरुष राधास्वामी दयाल ने अपनी अनमोल वाणी में कहा है :—

“आप आपको आप पिछानों। कहा और का नैंक न मानों” ॥  
मगर कहाँ हैं ऐसे व्यक्ति जो इस कीमती और अमूल्य शिक्षा से लाभ उठाकर अपने स्वरूप (जात) की ओर ही आकर्षित होते



हैं। देखने में तो हर जगह यही दिखाई दे रहा है कि सब के सब किसी न किसी प्रकार की अज्ञानता में जकड़े हुये हैं और रात दिन अपने स्वरूप से दूर चले जा रहे हैं और परछाईं में प्रकाश की खोज कर रहे हैं जिसका परिणाम हैरानी और परेशानी होता है। असलियत परछाईं में कहाँ है किन्तु परछाईं स्वयं असलियत के सहारे अपने कल्पित रूप का खेल दिखा रही है। अगर वह न होती तो परछाईं होना असम्भव था। धन्य है वह लोग जो इस रहस्य को समझ कर अपने अन्दर और अपने ही में असलियत, सारतत्व या सचाई की खोज करते हैं क्योंकि यह किसी न किसी दिन उस तक पहुँच जायेंगे। जो लोग परछाईं में उसकी खोज कर रहे हैं अर्थात् परछाईं को पकड़ना चाहते हैं तो उनको याद रहे कि परछाईं तो उनके हाथ नहीं आयेगी। मगर वह अपनी सत्यता को भी खो बैठेंगे और पथभ्रष्ट हो जायेंगे।

### दूसरा बचन

भील के किनारे ऊँचे ऊँचे पहाड़ खड़े हैं। उनके बीच में सुन्दर कोठियाँ भी बनी हैं। भील का पानी स्वच्छ और गहरा है। इन सब की स्वच्छ और चमकती हुई छाया पानी के भीतर दिखाई देती है। ऊँचे पहाड़ों का स्वच्छ रूप आँखों से साफ-साफ दिखाई नहीं देता है, मगर पानी में उनकी छाया इस कदर प्रत्यक्ष है कि तुम स्पष्ट गिन सकते हो। पेड़ वगैरह तक को भी गिन सकते हो। ठीक इसी प्रकार यह जगत जो भासता है और तुमको दिखाई देता है छाया ही छाया है। छाया के सिवा और कुछ नहीं है। इसी छाया को आदमी देखता, भालता है और इसी पर अपनी फिलोसफी, ज्ञान और नाप तोल की नींव स्थापित करता है। समस्त वाद विवाद केवल



छाया ही पर किये जाते हैं जिनमें अपनी हस्ती (सत्ता) नहीं है। दूसरों के अस्तित्व की छाया स्वयं भ्रम मात्र है। जब तक उसकी ओर दृष्टी है वह दिखाई देती रहती है और ध्यान के आकर्षण का कारण बनो हुई है और वास्तविक अस्तित्व रखती हुई मालूम देती है। थोड़ा अलग रहकर तुम उस छाया के रग-रग रेशा २ और उसके प्रत्येक अंग पर वाद विवाद करो। बुद्धि के थोड़े वाद विवाद के मैदान में दौड़ाओ लेकिन उसको पकड़ने जाओगे तो वह कब हाथ आयेगी। अगर उसकी खोज में भागे तो मुँह के बल भवसागर के पानी में गिरे और ऐसे डूबे कि फिर पता नहीं मिलेगा। इसी का नाम माया है जो अनहुई है और सत भासती है। अज्ञानी इसी असत माया के पीछे भागते हुये दुखी रहते हैं मगर यह किसके हाथ आई है। छाया को किसने पकड़ा है। इसका पकड़ना कठिन है।

माया छाया एकसो, बिरला जाने कोय।  
भगता के सनमुख रहे, पीछे भागे सोय ॥

### तीसरा बचन

भील का पानी छिछला है गहरा नहीं है, मगर पहाड़, आकाश, बादल सभी उसमें प्रतिबिम्बित हो रहे हैं और वह बहुत गहरे मालुम होते हैं। पानी छिछला है मगर गहरा दीखता है और उस थोड़े पानी में भीलों लम्बा आकाश और बादल दिखाई दे रहा है। यह दृश्य है। छोटी वस्तु में इसी प्रकार बड़ी बड़ी वस्तुये घिरी हुई और प्रतिबिम्बित होती हुई प्रतीत होती हैं।

बुन्द समाना सिन्धु में, यह जाने सब कोय।

सिन्धु समानाबुन्द में, बिरला जाने कोय ॥

इसी प्रकार के दृश्यों से समुद्र की लहरों के समान तमाशों



का ख्याल होता है, और उसी प्रकार ही एक बुंद के भीतर विस्तृत नदी हिलोरें लेती हुई प्रतीत होती है। इस भौतिक जगत में इसके बहुत से उदाहरण मौजूद हैं मगर ज्ञान नेत्रों की अत्यंत आवश्यकता है।

### चौथा बचन

पानी के अन्दर सुन्दर मकान की छाया दिखाई दी, जिस में मकान की खिड़कियाँ और जंगला और दरवाजे सब दिखाई देते थे। दृष्टि ऊपर की ओर गई। पहाड़ खड़ा है। उसकी ऊंची दीवारों में जो जगह बजगह घाटियाँ पड़ी हैं, वही मिल-जुल कर अति सुन्दर कोठी का प्रत्यक्ष नक्शा दिखा रही हैं। आँखों को साफ धोखा हो रहा है।

इसे माया में सब बात सम्भव है। इसमें जहाँ सम्भवता भी सम्भव (मुमकिन) है वहाँ असम्भवता भी सम्भव है। सन्त इसी कारण इसे द्वन्द्व जगत का खेल कहते हैं। एक वस्तु जो असल में विलकुल ही नहीं है, साकार होकर नेत्रों के सामने देखने में आ रही है। उसको इन्कार कैसे किया जावे। मकान दूसरा नहीं है जिसकी हम इसे छाया कहते हैं, मगर यह है। इसका रूप आँखों के सामने है। आँखें प्रत्यक्ष देख रही हैं। दूसरी जगह तो रेत में स्वरूप का खेल दिखाई देता है मगर यहाँ जल में स्वरूप है। अगर कोई आदमी यह समझले कि पानी के अन्दर मकान है और उसमें अन्दर जाने का प्रयत्न करे तो उसका नतीजा क्या होगा? ठीक उसी तरह यह असत (हस्ती न रखने वाला) संसार प्रगट हुआ है और सब उसके भ्रम में फँसे हुए हैं। अगर इस माया को हम अनिर्वचनीय न कहें तो क्या कहें? यह सब इसी प्रकार सम्भव और असम्भव रूप दिखा दिखाकर भ्रमाती, भुलाती और ठगती है। इसने



ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ऋषि, मुनि और देवताओं को ठग लिया । साधारण बुद्धि वाले मनु यह हर समय विज्ञान और फिलोसफी बघारते रहते हैं । उनको क्या बिसात है जो इसके धोखे के जाल में न फँसें । यह सबके सब फँसे हुए इसी माया में सत्यता की खोज कर रहे हैं और माया में लीन होकर मर खप जाते हैं । यह सब ठगे गये मगर इनमें से किसी ने भी माया को न ठगा ।

माया तू ठगनी भई, ठगत फिरै सब देस ।  
जा ठग ने ठगनी ठगी, ता ठग को आदेस ॥

### पांचवाँ बचन

आकाश में सूर्य प्रकाशित है । पानी में उसकी छाया पड़ रही है । असली सूर्य पर तो फिर भी आँख ठहर जाती है मगर नकली सूर्य इस कदर तेज है कि उस पर आँख जमाना असम्भव है । माया ब्रह्म से अधिक बलवान है । वह लोगों को सरलता से अपनी आकर्षण शक्ति से आकर्षित कर लेती है मगर ब्रह्म की ओर कौन रुचि करता है । उसके अस्तित्व के क्रायल तक होना लोग पसन्द नहीं करते । यही कारण है कि संसार में कोई आस्तिक है और कोई नास्तिक है । यदि वह संसार के दृश्यों पर गौर करें तो उनका त्रुटि पूर्ण ज्ञान क्षण मात्र में दूर हो जाय और उन्हें असलियत की जानकारी होजाय । चित्त के धोखा देने वाले इस दृश्य ने मुझे दो पाठ पढ़ाये । एक पाठ तो यह है कि छाया को देखकर असल की ओर ध्यान देना चाहिये और सत्यता असल में है नकल में नहीं है । नकल बिथ्या और भ्रम है । यदि नाम का जाप करते हो तो नामी की खोज करो । चन्द्रमा ऊपर है । वह नहर के पानी में नहीं है । पानी में डूँडो तो उसका पता क्या धूल मिलेगा ! डूब जाओगे और



कुत्ते वाली कहानी का उदाहरण तुम पर भी लागू होगा। दूसरा पाठ यह है कि जिस प्रकार सूर्य एक है और इस एक रूप वाले ने पानी, शीशा, बिल्लौरी पत्थर आदि साफ और स्वच्छ वस्तुओं में अपनी छाया डालकर अपने हजारों रूप बना लिये हैं, उसी प्रकार एक ही सत स्वरूप ने अलग अलग ढंग से असंख्य रूप भरे हैं मगर कठिनता तो यह है कि सबके सब प्रतिबिम्बित रूपों की ओर दृष्टी जमाये हुये हैं और असली रूप की कभी परवाह नहीं करते। संतों, सूफियों और महात्माओं ने इसी कारण से पंथ या तरीकत की नीव रक्खी, ताकि किसी तरह साधन और अभ्यास के सहारे से ही आध्यात्मिक स्थानों की चढ़ाई करते हुये धुरपद और अन्तिम स्थान की ओर भुके। उस समय उनको एकत्ववाद के विषय की समझ आयेगी। यह सुरत शब्द योग दुनिया के तमाम साधनों का तत्व व निचोड़ है।

पहिले करो सहसदल बासा। फिर त्रिकुटी का विमल बिलासा ॥  
सुन्न महासुन्न ताड़ी लागे। तब सोई सुरत कुछ कुछ जागे ॥  
भँवर गुफा चढ़ माया त्यागो। सत्त पुरुष के चरणन लागो ॥  
भेद पाय उत्तम पद पाओ। तब तिस पद का मर्म कुछ पाओ ॥  
जो कोई इतने ऊपर चढ़ै। रूप रंग रेखा से टरे ॥

### छटवां बचन

असलियत एक है। नीचे उसकी असंख्य छाया हैं और ज्यों ज्यों उतार होता गया वह अगणित और असंख्य दिखाई देती गई। आदि में क्या था? न 'हाँ' न 'नहीं', न सत न असत। वह क्या था कोईबाणी सेन हीं कह सकता। न मन उसका मनन कर सकता है। न वह प्रकाश था न अंधेरा, न नेकी था न बदी, न यह था न वह, मगर था वह अवश्य क्योंकि अगर वह (अस-



लियत) न होता तो यह (छाया) भी न होता। यदि असत (छाया) ही असत (छाया) होता तो असत से सत का होना सम्भव नहीं है, मगर वह क्या था। साकार और निराकार दोनों से रहित। फिर कोई कहे भी तो क्या कहे और किससे कहे और क्यों कहे ?

यों समझ लो कि वह एक समुद्र था। उससे एक बूंद नीचे निकली और उसी बूंद का पसारा यह जगत है। जिस तरह पहिले बाप के दिमाग से एक बूंद निकल कर अनेक लड़के और लड़कियों के रूप में प्रत्यक्ष हुई, उसी तरह उस सूर्य (सावित्री) की एक किरन ने प्रकाश बनकर प्रकाश के जगत का दृश्य दिखाया। मगर याद रहे कि हम उसे समुद्र या सूर्य केवल कवियों की अलंकार की भाषा में कह रहे हैं ताकि किसी तरह उलटे सीधे सारांश समझा जा सके, अन्यथा वह क्या है उसको वर्णन करने वाली बाणी हमको नहीं मिली है। मन बाणी की उस तक पहुँच नहीं है। वह जो बूंद या किरन नीचे की ओर उतरी वह केवल छाया थी, सत वस्तु नहीं थी, किन्तु सत प्रतीत होती थी, जिस तरह पहाड़ की छाया पानी के अन्दर सच्चा पहाड़ मालूम होती है। उस छाया की असलियत नहीं है मगर सत्य प्रतीत होती है। ठीक यही दशा इस जगत की है और यही दशा उसके कारोबार की है।

उसी बूंद ने नीचे उतर कर कहा—“मैं हूँ,” और वह सत पद, सत लोक में ठहरी। उसने सोचा और इस सोचने से उसके अन्दर ख्योली धार गोलाकार रूप में चक्कर खाने लगी। उसका नाम भँवर गुफा ठहरा। शास्त्र उसको तपलोक कहते हैं। इस तप या तपने की कई सूरतें हुईं। प्रथम चूँकि वह अपने भीतर ही भीतर तपा था उसके अन्दर लय की अवस्था उत्पन्न हुई जिसमें वह उनमुनि अवस्था में अंडाकार बना। संत इस हालत को शून्य और महा शून्य कहते हैं। यही शून्य-



वादी बौद्धों का अन्तिम स्थान है। शास्त्रकार इसे हिरण्यगर्भ अर्थात् सोने का अंडा कहते हैं। योगी इस अवस्था का नाम जन या जनलोक बताते हैं जिसका अर्थ उत्पन्न करने के हैं। यह अवस्था बीज रूप है। इससे नीचे रचना की धार फूटती है। यह सुषुप्ति की प्रथम अवस्था है। इसका ध्यान रक्खो ताकि आगे के विषय समझ में आते चलें।

इसने अन्दर ही अन्दर सोचकर हिरण्यगर्भ बनते हुये सोचा कि "मैं बड़ा होऊँ" और वह सब में श्रेष्ठ सबसे बड़ा और सबका आदि कहलाया। इस अवस्था का नाम महः या महलोक है। फिर उस बूंद ने विशेष प्रकार का व्यक्तित्व धारण किया और कहा—"मैं अकेला हूँ। अकेले रहने में भय मालूम होता है" मगर फिर जब ध्यान किया कि "मेरे सिवाय कोई नहीं है," तब उसका भय जाता रहा और निर्भयता का नाम परब्रह्म पद हुआ। उसने अपने आपको दो भागों में बाँट दिया। जैसे कि मटर का दाना पहिले भिला जुला होता है मगर बाँट देने से दो दाल की सुरत में दीखता है। उनमें से एक परब्रह्म कहलाया और दूसरा माया। एक पुरुष ठहरा, दूसरा प्रकृति हुआ। एक स्व स्वरूप हुआ दूसरा उसका गुण ठहरा। एक को असल कहो, दूसरे को नकल। एक सत है दूसरा असत। पहिले यह दोनों साथ साथ थे। बाद को ख्याली तौर पर अलग अलग हो गये। यह ब्रह्म पद है। संतों की भाषा में इसको त्रिकुटी कहते हैं जो तीन गुणों के स्थूल रूप का मेल है। इस अवस्था से पहिले गुण हिरण्यगर्भ में छिपे थे। योगियों ने इसका नाम अव्याकृत रक्खा। इसने कहा "मैं एक से अनेक हो जाऊँ" और उसी के भीतर ख्याली रचना के कारबार असंख्य रूपों में प्रगट हुये। इस स्थान की रचना उसी प्रकार होती है जिस प्रकार सोते हुये तुम अपने भीतर बहुत सी दुनिया आप पैदा



कर लेते हों। यह सृष्टि की पहिली स्वप्नावस्था है। इसका ध्यान रखना ताकि आगे के मसलों को समझ सको।

इसके पश्चात् उसी अनेक रूप वाले ने अपनी माया या शक्ति के बल से स्थूल रूप धारण किया। उसके और उसमें सहस्रों मुँह, सहस्रों भ्रुव, सहस्रों नेत्र, सहस्रों पाँव और सहस्रों इन्द्रियाँ आदि हैं। उसमें सारा जगत इस तरह पिरोया हुआ है, जिस प्रकार धागे के आधार पर मोती। उसमें सृष्टि की अगणित शकलें उसी प्रकार गुथी हुई हैं जिस प्रकार माला के मनिका के दाने होते हैं। यह वह शरीर है जिसका सिर दिव, जिसका पेट अंतरिक्ष और जिसका पाँव पृथ्वी या पाताल है। शास्त्रकारों ने इसको विराट का नाम दिया है। योगियों ने इसी को सहस्रार कहा है। संतों ने इसी का नाम ज्योति निरंजन रक्खा है और इसकी अवस्था को सहस्रदल कंबल कहा है। यह इस सृष्टि की पहली जाग्रत अवस्था है। इसको याद रखना ताकि आगे की बातों की समझ तुम में आ जाय। यह संसार के कुल मजहबों का ईश्वर परमेश्वर है। इसी की पूजा सब धर्मों व मतों में साधारण रूप से है। चूँकि इनको रचना की आगे की बातों का पता नहीं है, यह इसको सब कुछ समझकर इसी में अटक जाते हैं और गुरु न मिलने से उसके आगे नहीं बढ़ सकते। इस पुरुष को योगी स्वः और उसके लोक को स्वः लोक कहते हैं। यह पाँच स्थान आध्यात्मिक (रुहानी) हैं जिनका संकेत प्राणायाम के गायत्री मंत्र में आया है जैसे ॐ सत्यम (सतलोक) ॐ तपः (तपलोक) ॐ जनः (जनलोक) ॐ महः (महलोक) ॐ स्वः (स्वलोक)।

यहाँ तक तो दिव्य रचना के दर्जे हैं। इसके बाद विराट पुरुष से इस स्थूल और देहधारियों के संसार की उत्पत्ति हुई है। उसके दो दर्जे हैं—ओ३म् भुवः और ओ३म् भूः। इनमें भुवः



तो वह अवस्था है जिसमें आत्मा और देह मिली हुई है जैसे जीव और जंतु आदि और भूः यह पृथ्वी है जिसमें जीव बसते ठहरते, जीते जागते और मरते खपते रहते हैं। यह रचना के सात दर्जे हैं। हमने शास्त्रों और प्राणायामी योगियों के दृष्टिकोण से तुम्हें समझा दिया है। पहिले हमने उतरते हुये लोकों का नाम लिया था। अब चढ़ते हुये लेते हैं। जिस प्रकार प्राणी आध्यात्मिक स्थानों को अपने अन्दर तय करते हैं, उनके अनुसार गायत्री के प्राणायाम मंत्र की यह सूत्र होगी:—

ओ३म् भूः-ओ३म् भुवः-ओ३म् स्वः-ओ३म् महः ओ३म्  
जनः-ओ३म् तपः-ओ३म् सत्यम् ।

यह सब सातों लोकों का विस्तार बुन्द मात्र में हैं और वह बूंद भी छाया है, असली नहीं है। इस छाया की उधेड़ बुन में तमाम जीव फंसे हुये हैं। उनकी दृष्टि इससे ऊंची नहीं होती परमसंत कबीर साहब की अनमोल बाणी है—

आदि माया लखी चतुराई। भूंठी बाजी साँच दिखाई ॥

सतपुरुष राधास्वामी दयाल ने जीवों की दुख पूर्ण अवस्था को देखकर संत सतगुरु स्वरूप धारण किया और जो जीव चेतवान और समझदार हैं, उनके लिये इस प्रतिबिम्बितिव कल्पित जगत का अपने शब्दों में नकशा खींचकर उनकी दृष्टि को ऊंचा करके उस शुद्ध स्वरूप का पता दिया ताकि जो अधिकारी हों, वह निष्पन्न भाव, उच्च विचार और उच्च साहस से आत्मिक लाभ उठाकर संतों के धुरपद की ओर भुकेँ और छाया रूपी दुनिया को छोड़कर असलियत प्राप्त करें। छाया के भ्रम में पड़ा जीव नाना प्रकार के कष्ट उठाता है और सदैव दुखी रहना है।



## सातवां बचन

जिस प्रकार ब्रह्म रूपी बूंद में सृष्टि, स्वप्न और जाग्रत है, इसी प्रकार वही दशा कुल जीवों में साधारण रूप से है। ब्रह्म सत स्वरूप की छाया है और यह जीव भी उसी की छाया हैं। इनमें जो असलियत है उसी की है। केवल अवस्था और स्थान का भेद है। कोई इस समय कठिनाई से ही हमारी बात को समझ सकेगा। हम कहते हैं ब्रह्म की सृष्टि, स्थिति, प्रलय भी वैसे ही होती है जैसे जीवों की हुआ करती है। बस! वह भी किसी दशा में हमारा इष्ट पद नहीं हो सकता और न होना चाहिये। हमने तो कोई ऐसा इष्ट धारण करना चाहिये जो सबसे ऊंचा हो। संत मत में इस बात पर बहुत जोर दिया गया है।

## आठवां बचन

इस छाया के भ्रम से बचने और उसके जाल से छुटकारा पाने के नियमों में एक नियम अभ्यास है और दूसरा वैराग्य है। अभ्यास क्या है? दृष्टि को इस कदर ऊंचा करना, करते रहना और ऊंचा करके इतना अनुभव प्राप्त कर लेना कि चित्त के अन्दर इस छाया का थोड़ा भी भ्रम न रहने पावे। वह इसके प्रभाव से बिलकुल शुद्ध और स्वच्छ हो जाय यह एक बात है। दूसरी बात महात्माओं, साधुओं और संतों का सत्संग है। यह वह लोग हैं जिन्होंने अंश रूप में या पूर्ण रूप में अपनी दृष्टि को ऊंचा कर लिया है और प्रसन्नता पूर्वक अपने निज अनुभव से दूसरे जिज्ञासुओं को लाभ पहुँचाते रहते हैं। किसी सीमा तक यह बात शास्त्रों और सूत्रग्रन्थों के अध्ययन से भी सम्भव है मगर स्वयं ग्रन्थ किसी साधन सम्पन्न और अन्तरीय कमाई किये हुआ की व्याख्या के आधीन हैं अर्थात् उनके सम-



भाये बिना ठीक तरह समझ में नहीं आते। इसलिये सत संग की मुख्यता प्रथम है और ग्रन्थों के अध्ययन का नम्बर दूसरा है। इस प्रकार के सतसंग से शुरू में जबानी और इल्मी जानकारी में वृद्धि होगी। इसके पश्चात् यह जानकारी मन को विचार करने के लिये विवश करेगी और इससे वैराग उत्पन्न होगा। वैराग शरीर और मनसे करना है। इन दोनों साधनों को उस समय तक साथ साथ चलना चाहिये, जब तक अपना निजी अनुभव न फुरे और अन्त में कुछ चढ़ाई न हो जाय। अभ्यास और वैराग ही परमार्थ के असली मार्ग हैं और इन दोनों के द्वारा पहिले शौक बढ़ता है फिर चाह या तलब को नित्य प्रति हरकत मिलती है। चाह और शौक सच्चे प्रेम में बदल जाते हैं। प्रेमी और प्रिय का अपने भीतर पता लगता है और यह पता प्रेमी और प्रिय दोनों को मिलाकर एक करने लगता है। उनके एक हो जाने का नाम एकत्व है। एकत्व से बुद्धि आती है जिसे हम ज्ञान कहते हैं। जब ज्ञान हो जाता है तब बेपरवाही आजाती है। इस बेपरवाही को निष्कामता कहा जाता है। जब चित्त इच्छा रहित होकर शुद्ध हो जाता है तब आत्मा आत्मा में लय हो जाती है अर्थात् समाधिष्ठ हो जाती है। इसे निर्विकल्प समाधि कहते हैं। सविकल्प समाधि में द्वैत भाव रहता है। अहंकार एक दम दूर नहीं होता। निर्विकल्प समाधि में ऐसा कोई भय नहीं रहता।

इस अभ्यास (तसवुफ) की सात मंजिलें हैं जिनका हमने दूसरी शकल में प्राणायाम के गायत्री मंत्र में नकशा खींचा है। किसी ने इन्हीं बातों को किसी प्रकार बयान किया और किसी सी तरह। अभिप्राय दोनों का एक है।

हिल मिल खेलूँ शब्द में, अन्तर रही न रेख।

समझे का मत एक है, क्या पंडित क्या शेख ॥



## नवों बचन

अब हम अभ्यास की दूसरी व्याख्या करते हैं—

(१) ओ३म् भूः—देह से ऊपर आओ अर्थात् देह से ऊंचे चढ़ो या दृष्टि को ऊंची करलो ताकि वह शरीर पर न रहे ।

(२) ओ३म् भुवः—जीवपने के विचार, मन के संकल्प विकल्प, देह, मन, और आत्मा के परस्पर सम्बन्धों पर ध्यान करते हुये अपने भीतर उस स्थान पर चढ़ो, जहाँ जीव है और जहाँ से जीवपने की उत्पत्ति होती है ।

(३) ओ३म् स्वः—फिर सोचो कि इस जीव का आधार क्या है । अपने भीतर उसके स्थान पर चढ़ो । इसी को हमने ऊपर विराट पुरुष, ईश्वर और खुदा कहा है । इससे संबन्ध पैदा करो । उसका केन्द्र जान करके उससे कुछ दिनों लौ लगाओ ताकि तुम में उसका बल आवै । बिना उसकी सहायता लिये हुये अन्तर की चढ़ाई कठिन है, अन्यथा तुम थक जाओगे और ऊपर न चढ़ सकोगे । पहाड़ों की चढ़ाई बहुत कठिन होती है ।

(४) ओ३म् महः—फिर जो उससे भी बड़ा है उसके केन्द्र की अपने भीतर खोज करो । यह सब स्थान तुम्हारे भीतर हैं । किसी जानकार से इनका पता लगेगा । यह परमेश्वर अव्याकृत कहलाता है । इसके साथ सम्बन्ध होने से बड़ाई मिलती है और तुम बड़े हो जाते हो । यह भी अत्यंत आवश्यक बात है ।

(५) ओ३म् जनः—इसके बाद जन लोक अर्थात् बाह्य जगत के बीच के स्थान पर चढ़ो जो हिरण्य गर्भ कहलाता है । वास्तविक अर्थों में यही इस त्रिगुणात्मक जगत का स्वामी यानी पैदा करने वाला है और अपने भीतर से मकड़ी की तरह मुख से रचना का जाला निकालने वाला है । यह तीन पद-स्वः, जनः, महः अर्थात् विराट, अव्याकृत और हिरण्य



गर्भ ब्रह्म के तीन पद हैं। इनको समझलो। चाहे सस्संग में जाकर इनका भेद लेलो। बिना इनका भेद लिये हुये तुमको कभी ब्रह्म का ज्ञान नहीं होगा।

(६) ओ३म् तपः—जब सबल ब्रह्म के तीन ऊँचे स्थानों को पार करलिया तो अब तप लोक को चलो, जहाँ से धार तपती हुई नीचे उतरी है। वही कुल रचना का आधार है। इसका नाम परब्रह्म या शुद्ध ब्रह्म है। यह ब्रह्मांड के वह छः स्थान हैं जिनकी छाया इस पिंड में क्रमशः मौजूद है और जिसे शाक्त मतवाले और दूसरे शास्त्रकार भी षट् चक्रों का नाम देते हैं। जब तक यह स्थान पुरे न होंगे, कोई भी ऊँचा नहीं जा सकता। इसी परब्रह्म का नाम महा काल है। इसके नीचे हमने जिस ब्रह्म के तीन रूप दिखाये हैं वह ब्रह्म काल कहलाता है। काल समय को कहते हैं। जिस में, जिसके अन्दर, जिसके आधीन और जिसके कारण से घटनायें बार बार होती रहती हैं उसे समय या काल कहते हैं। यह काल पुरुष है। उसका व्यक्तित्व इतना सूक्ष्म है कि साधारण बुद्धि वाला मनुष्य उसे समझ नहीं सकता। फिर भी हमारे इन वाक्यों की सहायता से कुछ न कुछ समझ आजायगी। इस काल की चोटी पर महा काल है जो तप लोक का मालिक और धनी है। ब्रह्म में तो सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कार्य हुआ ही करता है। महा प्रलय की सीमा इस महा काल तक है। इस तक प्रलय की सीमा है। इसके आगे प्रलय नहीं है।

(७) ओ३म् सत्यम्—अब सत पद पर आओ। सत का नाम हस्ती, जात, हकीकत और निज स्वरूप है। यह मृत्यु के भय से स्वतन्त्र है। जो आदमी अभ्यास करके यहां तक पहुँच जायगा वह आत्म अनुभवी और सतलोक का वासी हो जायगा और फिर भूल कर कभी छाया की ओर ध्यान न करेगा। यह



गायत्री मंत्र के अभ्यास की व्याख्या है।

(ब) इसी प्रकार सुफियों के आत्मिक (रूहानी) स्थानों और शब्दों को समझो। नासूत, मलकूत, जबरूत, लाहूत, हाहूत, हूतउलहूत, हूत वगैरह की भी व्याख्या की जा सकती है। जो प्राणायाम गायत्री मंत्र के शब्द हैं यह वही हैं। हाँ, इतना अन्तर है कि सफी साहिबान ने अपनी फिलोसफी को न बाकायदा बनाया और न संतोष जनक व्याख्या की। वह अपनी शिक्षा को कहावतों, गजलों, और लतीफों तक ही सीमित रखते हैं मगर उनका भी मार्ग असली (क्रियात्मक) है। वे असल से रूहानी दर्जों को तय करते हैं। मैं इन शब्दों की व्याख्या यहाँ कर देता मगर चूँकि इनको एक अलग पुस्तक 'रूहानी तरकी' में विवरण सहित लिख चुका हूँ, इसलिये इस अवसर पर छोड़े देता हूँ। यहाँ मैं एक और विशेष ढंग पर इनकी व्याख्या करता हूँ और वह यह है:—

सुफियों का इष्ट पद निश्च शाश्वत अस्तित्व, निज स्वरूप (जात) से मिलना है। इन सब स्थानों का तय करना उसके प्राप्त करने के लिये आवश्यक समझा गया है।

(१) नासूत—गफलत है। भूल है। यह स्थूलपना है। इस गफलत को देह के मंडल या लोक से ऊँचा करके आत्मा के लोक में पहुँचाओ। यह प्रारम्भिक सीढ़ी है।

(२) मलकूत—का सम्बन्ध मानसिक भावों से है। मनुष्य इस स्थान पर पहुँच कर इतना शुद्ध और निर्मल हो जाय कि उसमें मलकूती अर्थात् फरिश्तों जैसे गुण पैदा हो जाँय। ईश्वर का सच्चा प्रेम उसमें प्रगट हो जाय। कोई असत्य विचार उसके चित्त में भी न आने पाये।

(३) जबरूत—का सम्बन्ध आत्मा बल्कि जीवात्मा की अवस्था से है। उसका असली मन्तव्य आत्म साक्षात्कार से





यहाँ भी मौजूद हैं, मगर चूँकि वह किसी समय संस्कृत भाषा से अरबी में अनुवाद किये हुये थे, अतः वे असली रूप और असली अभिप्राय को कायम न रख सके। फिर भी अनुभवी संत सरलता से समझ सकते हैं कि जो वह हैं, वही यह भी हैं।

नासूत में अचेतन्यता और अज्ञानता है जो ओ३म् भूः से संबंध है। मलकूत में चेतन्यता और ज्ञान है जो चेतन रूप ओ३म् भुवः से संबंधित किया जा सकता है। जवरूप में देखना, साक्षात्कार करना और मिलाप करना है जो ओ३म् स्वः से संबंधित है। यह स्थान ईश्वर का है। लाहूत-असत के अस्तित्व या होने से इनकार करना और सत की सत्यता को मानना है जो ओ३म् महः से संबंधित है क्योंकि वही असलियत है। हूत असली और सच्चे अस्तित्व को मान कर उससे एक होना है। वह ओ३म् जनः का विषय है, क्यों कि यह वही अस्तित्व है, जिससे सब पैदा हुये हैं। इसी तरह बाकी के दो मरहलों को समझो जो ओ३म् तपः और ओ३म् सत्यम् के अभिप्राय को बताते हैं। सूफी लोगों और योगी लोगों की आंशिक रूप में व पूर्णरूप में समानता दिखा दी गई। जो थोड़ा भी अभ्यास करते हैं वह इसे सच मानेंगे। जिनको अब तक संतों का मत्संग प्राप्त नहीं हुआ है वह उसे समझ भी न सकेंगे। मानना न मानना तो अलग रहा।

(स) इसी तरह अब संतों के दृष्टिकोण से साक्षात्कार, (मुजाहिदा) की व्याख्या करते हैं। संतों का मार्ग इन सबसे सूक्ष्म, बाकायदा और अधिक साफ है। प्राणायामी योगी तो अब नहीं रहे वरना वह उस प्राणायाम मंत्र की वैसी ही व्याख्या करते जैसी मैं करता हूँ। रहे सूफी मत के साधक, उनमें बहुतेरे तो यही नहीं जानते कि साधकों के रहानी स्थानों का अक्स भानव शरीर के भीतर किस किस जगह है। कोई



दिल पर चोट लगाता है। कोई जाप करता हुआ चिल्ला खींचता है। कोई सूतेसरमदी का शौकीन है। कोई सुल्तान लज्जकार का अभ्यासी है। किसी को साधारणतया दृष्टि साधन अर्थात् आँख की पुतलियों को उलट कर योंही अनाप शनाप अंतरीय प्रकाश के दर्शन करने का साधन मिखाया जाता है। लाभ तो इनको होता है क्यों कि किसी की भी कमाई अकारण नहीं जाती। मनुष्य का मन इस दुनियाँ में उच्चतम् और बड़ा भारी चमत्कारक है। यह जिधर आकर्षित होगा, विचित्र और आश्चर्य जनक परिणाम कर दिखायेगा। मगर हमारा मतलब कुछ और है। आध्यात्मिक (रूहानी) शिक्षा की बाकायदगी तथा स्थानों की विवरण सहित न्यभ्रया यहाँ भी नहीं है। इन सबकी कमी की पूर्ति संतोंने अपनी शिक्षा से करदी है। वह अपने शिष्यों को शिक्षा देते समय सबकी जानकारी करा देते हैं और समस्त अध्यात्मिक केन्द्रों को जता देते हैं। जिस तरह मनुष्य के शरीर की मुख्य मुख्य नस दवाने से मुख्य, मुख्य प्रकार के प्रभाव होते हैं उसी तरह इस शरीर के भीतर मुख्य-मुख्य स्थान और केन्द्रों पर ध्यान के स्थिर करने से विशेष प्रकार के रस, आनन्द, और ज्ञान प्राप्त हुआ करते हैं। विशेषरूप से राधास्वामी मत में विशेष प्रकार के साधन बता कर साधक और अभ्यासी का काम सरल कर दिया जाता है।

पहिले योगी नीचे के षट चक्रों का साधन करके मस्तिष्क की ओर चलते थे। संतों ने इनके इस अभ्यास के तरीके को बिलकुल छोड़ दिया है क्योंकि यह बहुत कठिन थे। इनसे सिवाय साधारण मानसिक एकाग्रता के आध्यात्मिक लाभ कम होता था। उनका अभ्यास तीसरे तिल के स्थान से प्रारम्भ होता है जिसको सूफी नुक्तयेसवेदा और योगी शिव नेत्र या रुद्रनेत्र कहते हैं। इसका नाम त्रयनेत्र भी है। अब



इनके अध्यात्मिक स्थानों की व्याख्या सुनो—

(१) सहस्रदल कमल—यह सहस्रदल या पंखड़ियों के कमल का स्थान है जो तीसरे तिल से थोड़ा ऊंचा और इससे मिला हुआ है। यह विराट पुरुष या ज्योति निरंजन का लोक है जिसके हजारों सिर, हजारों पाँव, हजारों इन्द्रियाँ आदि हैं। यह अनेकता के बाह्य जगत को उत्पन्न करने वाला है। इसका साक्षात्कार, इसके तेज का दर्शन और इसके शब्द का श्रवण संत मत के अभ्यासी का पहिला काम और प्रथम चढ़ाई है। यह ब्रह्म की जाग्रत अवस्था है—

(२) त्रिकुटी—यह ओ३म का पद और ब्रह्म का स्थान है जिसको अव्याकृत कहा गया है। इससे मानसिक जगत उत्पन्न हुआ है। जिस तरह हम सोते समय अपने ही चित्त से कल्पित रचना करते रहते हैं, उसी तरह अपने ही भीतर भीतर यह भी काम करता है। इसमें चूँकि तीन गुण—सत, रज, तम और तीन व्यक्तित्व—ईश्वर, जीव, प्रकृति और तीन गुणों की तीन सूक्ष्म धारें—ब्रह्मा, विष्णु, महेश सम्मिलित रहते हैं, इसलिये इसको त्रिकुटी कहा गया है। त्रिकुटी के जगत का भंडार यही स्थान है। इसी में बाप, बेटा, लहुलकुदूस का अनुमान होता है। किसी किसी ने इसे हिरण्यगर्भ भी कहा है मगर वह गलती है। यह स्थान ब्रह्म की स्वप्नावस्था का है। यहाँ अव्याकृत ब्रह्म के तेज का साक्षात्कार, ब्रह्माण्ड का दर्शन और ओ३म धुनि का श्रवण होता है।

(३ व ४) सुन्न, महासुन्न—यह हिरण्य गर्भ का स्थान है जो बीज रूप है। इस अवस्था में चढ़ाई के समय अन्धकार से मार्ग में रुकावट होती है। सुन्न क्या है अर्द्धनिद्रा या सुषुप्ति और महासुन्न क्या है घोर सुषुप्ति। इस स्थान पर आकर उसी तरह तल्लीनता या लय की हालत हो जाती है जिस तरह



सुषुप्ति में जाकर हम सब लोगों को बेखबरी हो जाती है। यदि अनुभवी सत्पुरुष सहायता न दे तो फिर इससे आगे चलना बिलकुल असम्भव हो जाता है। यह ब्रह्मरेन्द्र की असली चोटी है। गुरु की सहायता से जब अन्धकार नाश हो जाता है उस समय बेखबरी की हालत दूर हो जाती है और तब उसका ज्ञान होता है। यहाँ आकर हिरण्य गर्भ का दर्शन, उसके बीज रूप का ज्ञान और रारंग-सारंग बगैरह चार प्रकार की आवाजों का श्रवण होता है। प्रायः अनजान योगियों ने इसी को निर्विकल्प समाधि मान लिया है। यह अवस्था ब्रह्म की गहरी नींद या सुषुप्ति कहलाती है।

(५) भँवर गुफा—यह परब्रह्म का पद है। यह इस तमाम रचना का आधार है। इमको महा काल भी कहा जाता है। यह स्थान एक घूमने वाला चक्र है जिससे आदि माया की धार फूटती है और नीचे की कुल रचना को शक्ति देती रहती है। यहाँ चढ़कर परब्रह्म पद का साक्षात्कार, काल और माया का साक्षात्कार और मुर्ली की धुन का श्रवण किया जाता है। इसमें एकत्व का बीज है।

(६) सतपद, सतधाम, या सतलोक—यह स्थान वहदत है जो सत स्वरूप, जगत् हकीकत और सार तत्व कहलाता है। जो यहाँ आ गया वह काल चक्र से परे पहुँच गया। अब उसकी जन्म मरण का भय बाकी नहीं रहा। यहाँ आकर सत पुरुष के तेज का साक्षात्कार और लीन की धुन में हक हक और सत सत की आवाज कानों में सुनाई देती हैं।

(७) अलख, अगम, राधास्वामी—यह तीनों स्थान कहने को तो तीन मगर परस्पर मिले जुले हुये हैं। यहाँ शब्द की धुन विशेष प्रकार की होती है। तेज या प्रकाश भी बढ़ से बढ़ कर है। जो कोई यहाँ तक पहुँच जाता है, वह परम संत कह-



लाता है। फिर उसमें परखे जाने या पहिचाने जाने वाली अवस्थाओं का मेल नहीं होता और न हो सकता है। गुरु की वाणी है—‘जो कोई इतने ऊँचे चढ़े। रंग रूप रेखा से टरे।’ यह संतों का मार्ग है जिसका संक्षिप्त नकशा शब्दों में खींच दिया गया है ताकि अभ्यासियों को कम से कम जानकारी तो हो जावे। संत मत इस दृष्टि से जगत का अत्यंत उच्च मार्ग है, जो सरल होने के अतिरिक्त प्रभावशाली भी है। स्त्री, पुरुष, जवान और बूढ़े इससे बिना किसी भय के समान रूप से लाभ उठा सकते हैं। हाँ, अधिकार और योग्यता की आवश्यकता है।

यह छाया पुरुष के बन्धन से सदैव के लिये निकल जाने का सरल साधन है। इस पर वादविवाद करना गलती में दाखिल है। यह केवल करनी का मार्ग है, कथनी का मार्ग नहीं है। गुरु का बचन है:—

यह करनी का भेद है, नाही बुद्धि विचार।

कथनी छौड़ करनी करो, तब पाओ कुछ सार ॥

इस बचन पर जो पढ़ने वाले विशाल दृष्टि से सोच विचार करेंगे उनको सत्यता ज्ञात होगी और जो इसके साधन में मन लगा कर लगेंगे, वह कर्म, उपासना और ज्ञान की श्रेणियों को सरलता के साथ पार करके ध्यानी ज्ञानी होते हुये स्वयं परमसंत गति को प्राप्त कर लेंगे, क्योंकि जहाँ यह साधन सिखाया जाता है वहाँ साथ ही साथ सत्संग में कुल दुनियाँ के धर्म और सम्प्रदायों के तुलनात्मक पहलुओं को दिखाते हुये धर्म और फिलोसफी का ज्ञान भी प्रदान किया जाता है, ताकि अभ्यास में भ्रम की वजह से कोई त्रुटि न रहने पावे। यहाँ वेदाँत, साँख्य, योग और उपनिषदों के भी नियमों पर काफी प्रकाश डाला जाता है। किसी के खंडन मंडन से काम नहीं लिया जाता, क्योंकि राधास्वामी मत असल में बिल-कुल



ही निष्पत्ता और दूरदर्शिता का मार्ग है। किसी का खंडन न करके यह मत सबकी सच्चाई को स्वीकार करता है और यथाशक्ति उनके असली मन्तव्य से भी जानकारी करा देता है। यह सबका मानने वाला और सबका सहायक है। पुराणों के गूढ़ रहस्य की ताली इसके हाथ में है और यही कारण है कि सब लोग कहते हैं—“संत मत सर्व मत रक्षक है।”

### दसवां वचन

(१०) पंथ का अर्थ है मार्ग और तरीकत का अर्थ भी मार्ग है। जो पंथ पर चले वह पंथाई है। जो तरीकत पर चले वह तरीकत वाला है। मसलक भी मार्ग को कहते हैं। और सालिक राह चलने वाला है। पंथ, तरीकत और मसलक कहाँ है? यह हर मनुष्य के अपने घट में है। जिसको चलना होता है, वह अपने ही अन्दर चलता है बाहर नहीं चलता। मार्ग में ठेके और पड़ाव भी हैं। उन्ही का नाम मरहला है। इस मार्ग की एक मंजिल अन्तिम भी है। जब मुसाफिर पड़ाव पर पहुँच जाता है तब उसे फिर पंथाई, तरीकत वाला या सालिक नहीं कहते बल्कि वह कुछ और हो जाता है। इस अंतरीय मार्ग का इष्टपद सत् स्वरूप है। जब मार्ग का रुकना खतम हो गया और वह अपने ठिकाने पर पहुँच गया, तब वह आप सत् स्वरूप होगया। बूँद समुद्र में मिल गई। ढूँढने से भी उसका पता न मिलेगा। ज़रा किसी बूँद को पानी में डालकर तलाश तो करो। अगर वह बूँद यहां मिलता होगा तो सत् स्वरूप के मिलाप होने पर उसका भी पता लग सकेगा। मगर यह विल्कुल भ्रम है। संस्कृत की कहावत है—“ब्रह्म विद् ब्रह्म भवति” अर्थात् ब्रह्म को जान लिया वह स्वयं ब्रह्म हो गया। ब्रह्म पंथाइयों का इष्ट पद नहीं है किन्तु वह पंथ की जंजीर की बीच की कड़ी है।



जैसे कि पहिले बचनों में स्पष्ट रूप से व्याख्या सहित वर्णन कर दिया गया है। अब चाहे कोई मानें या न मानें उसे अधिकार है। हमने तो अपने तौर पर समझाने बुझाने में कोई कसर बाकी नहीं रखी है। ब्रह्म फैला हुआ और सर्व व्यापक व्यक्तित्व है। उस तक विवेक विचार की लकीर खेंची जा सकती है। ब्रह्म शब्द गुण बोधक है। गुण ही का दूसरा नाम माया है। ब्रह्म की सीमा को माया कहते हैं मगर सत स्वरूप न एक है न दो है, न व्यापक है, न अव्यापक है। इसे समझो तब काम बने। अगर नहीं समझते तो हम क्या करें। हम तो सच्ची सच्ची और खरी खरी बात कहते हैं। सच्ची बात सुनाने वाले को सब लोग बुरा भला कहते रहते हैं—

सच्ची बात कबीरा कहै। सबके मन से उतरा रहै ॥

### ग्यारहवाँ बचन

(११) सहस्रदल कंबल का मालिक जो विराट पुरुष है वह सहस्रों रूप वाला है। पंथाई पहिले इससे मिलता है। फिर त्रिकुटी में आकर तीन विशेषताओं से अपने अन्दर सम्बन्ध पैदा करता है। तीन विशेषतायें ईश्वर, प्रकृति और जीव हैं जो ब्रह्माण्ड में सब जगह भरे हुये हैं। इसी ब्रह्माण्ड का नाम त्रिलोकी है जिसमें हमारा पिंड भी है। जब इससे ऊंचे चले तो फिर काल और माया अर्थात् पुरुष और प्रकृति का भेद मिलो। यह भँवर गुफा का स्थान है। यहाँ तक द्वैत का मंडल है। जब अभ्यासी इसकी सीमा से बाहर होगा, तब वह एकत्व का अथवा उद्वैत का ज्ञान प्राप्त करेगा। इसको संत मत अथवा राधास्वामी मत में सतलोक और सत्यधाम कहते हैं। यह स्थान सत है। यहाँ तक का कुछ कुछ अनुभव अभ्यासी को होता है और वह इसका साक्षात्कार करता है। आगे के जो



पद बयान किये गये हैं, वह अगम, अलख और राधास्वामी हैं जहाँ मन और बाणी थक जाते हैं और इनकी वहाँ तक पहुँच नहीं है।

### बारहवाँ बचन

(१२) अब कुछ आदर्श के विषय में सुनो। जो मनुष्य विराट पुरुष का इष्ट स्थापित करेगा वह अनेक वादी होगा, क्योंकि उससे अनेकता का सम्बन्ध है। वह हजारों रूप वाला है। कोई उसके किस किस रूप का ध्यान करेगा। ऐसे ध्यान करने वाले का मन स्वभाव से ही चंचल होगा। यह प्राकृतिक नियम है। हम क्यों चंचल हैं? क्योंकि हमारे मन को कई इन्द्रियों के काम काज और बाह्य जगत की अनेकता से सम्बन्ध है। जो हम देखते, करते, सुनते, खाते, पीते हैं सबका संस्कार हमारे भीतर अंकित हो जाता है। यही प्रभाव बारी बारी हम पर चढ़ाई करते रहते हैं और हमको एक अवस्था में स्थिर नहीं होने देते। मन की चंचलता दूर होने पर नहीं आती। चंचल मन को एकाम्र करना और एक ओर लगाना कठिन होता है। जो मनुष्य ब्रह्म का इष्ट धारण करेगा वह तीन गुणों का प्रेमी होगा, क्योंकि ब्रह्म में तीन गुण व्याप्त हैं। उसमें माया है उसी में जीव है और वह ब्रह्म भी है। वही असल में त्रिमूर्ति है। कहीं कहीं पुराणों ने त्रिमूर्ति का अत्यन्त प्रभावशाली चित्र दिखाया है। रुद्र की मूर्ति में तीन रूप दिखाकर पुराण इसका अच्छा खाका खींचते हैं। जो तीन से काम रक्खेगा, उसका मन कभी ऊँचे जायगा और कभी नीचे जावगा और कभी बीच में रहेगा। छाया रूपी दुनियाँ से ऐसे अभ्यासी को ऊँचे चढ़ना और उनपर सदैव के लिये विजयी होना कठिन होगा।



जो मनुष्य परब्रह्म का ध्यान करेगा, उसमें पुरुष और प्रकृति, काल और माया, असल और नकल दोनों का प्रभाव होगा। इससे वह कैसे बच सकता है। यह सोचने समझने और ध्यान करने की बात है। मामूली समझ का आदमी भी इसे जान सकता है।

तात्पर्य यह कि जो तीन पद बताये गये हैं वह भ्रम में डालने वाले और चंचल बनाने वाले हैं। इसलिये क्रमानुसार नियम पूर्वक इनसे काम लेकर चौथे पद की ओर ध्यान करने और उससे संबन्ध जोड़ने की अत्यन्त आवश्यकता है ताकि किसी प्रकार हममें एक ओर लगना ( एकदली ) तो आवे; क्योंकि इस चौथे पद में एकत्वपना है और इसी का नाम सत् पद है। इसके बिना शोधे हुये एकत्व का समझना और एक बनना असम्भव है। सुरत शब्द योग के अभ्यासी को अभ्यास करने से पहिले यह जान लेना चाहिये कि उसको कैसा इष्ट धारण करना है। तब उसको अभ्यास का असली लाभ होगा अन्यथा किसी दृढ़ तक तो हर काम करने वाले को मन के टिकने का अस्थायी लाभ और आनन्द मिल जाता है, मगर उत्थान से वह सदैव के लिये रोका नहीं जा सकता।

### तेरहवां वचन

एक आस विश्वास इक, मन में प्रेम प्रतीति ।  
 बहुत आस विश्वास बहु, चंचलता की रीति ॥  
 गुरुमुख के तो एक है, अरु मन मत के दोय ।  
 जो कोई मन मत भया, चैन न पावै सोय ॥  
 गुरु मुख में पतिव्रत पना, मन मत है व्यभिचार ।  
 पतिव्रता को सुख घना, व्यभिचारी मुख चार ॥



एक ही साधे सब सधै, सब साधे सब जाय ।  
 सब की आस निरास है, एक आस हरषाय ॥  
 पात पात का सींचना, अज्ञानी ब्यौहार ।  
 भाली सींचै मूल को, पावै उत्तम सार ॥  
 पात पात के सींचते, वृक्ष को दिया सुखाय ।  
 मूल सींच माली खुशी, फूला फला अघाय ॥  
 तज दे दुचिताई पना, इक चित गुरु की सेव ।  
 गुरु सम सुन ले साधुआ, और न कोई देव ॥  
 नारी आई पीव घर, पीव का कीया प्यार ।  
 घर के संबंधी सकल, करै आप सत्कार ॥  
 नारी आई पीय घर, पीय से किया न नेह ।  
 सासु ससुर घृणा करे, बिगड़ गया सब गेह ॥  
 एक गुरु की बन्दना, करै भगत का काम ।  
 जो सबकी आसा करै, चंचल आठों जाम ॥  
 साईं यही है प्रार्थना, एक तुम्हारी आस ।  
 सबहिं छाँड़ तुमको भजूं, रहूँ तुम्हारा दास ॥  
 दो मालिक का सेवका, क्यों पावै सुख चैन ।  
 वह गरीब भटका करै, इधर उधर दिन रैन ॥

यह परमार्थ का सार है । जिसकी दृष्टि एक पर रहती है  
 वह बहुतों की ओर कम आकर्षित होता है । जब वह सब  
 को देखा करता है वह उनके गुण और दोषों का भागी बन  
 जाने हुये भी हुआ करता है । हममें दूसरों के दोष देखने  
 और नुकता चीनी की आदत केवल इस वजह से आती है कि  
 हम सबको देखा करते हैं । पति व्रता स्त्री, साधू, और सूरमा  
 सिवाय अपने पति, गुरु और मालिक के दूसरों से बिलकुल  
 सम्बन्ध नहीं रखते । उस स्त्री की दृष्टि में पति एक है बाकी  
 सब पुरुष नपुंसक हैं । साधू ने एक गुरु कर लिया और बस !

रात दिन उसी के प्रेम का दीपक अपने हृदय रूपी कोठे में प्रकाशित करता है। सुरमा एक मालिक का हो रहा और उस पर उसे पूरा विश्वास है। यह तीनों एक ही व्यक्ति के लिये अपना गला कटाते हैं और परमसुख भोगते हैं। कुत्ते की भक्ति महा विचित्र है। उसका मालिक चाहे निर्धन क्यों न हो मगर वह धनवान और शक्तिशाली राजा तक को फूटी आँख से भी नहीं देखता और उसी एक मालिक का हो रहता है और उसमें निर्दोषता और पवित्रता आ जाती है। उससे अधिक संतोषी और कौन हो सकता है। अगर मालिक टुकड़ा डाल देता है तो उसी पर गुजर कर लेता है और रात दिन उसी के साथ पड़ा रहता है। अगर सेवक और भक्त में ऐसी टेक नहीं है तो समझ लेना चाहिये कि वह कुत्ते से भी गया गुजरा है, मगर यह याद रहे कि टेक के अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य में पक्षपात और हठधर्मी आ जाये और वह केवल टेकी होने के कारण दूसरों से लड़ता भगड़ता रहे। यह मूर्खता है। जगत के व्यवहार को ही देख लो। एक आदमी ने एक स्त्री की या एक मालिक किया मगर वह उनका नाम ले लेकर दूसरों से लड़ाई तो नहीं करता। उसे अपने काम से काम है। सबसे पहिले आवश्यकता तो इस बात की है कि सद्गुरु को भली प्रकार खोज लिया जाय। फिर उसके परमार्थ का लाभ उठाया जाय। बिना जाने बूझे गुरु करना बड़ी गलती है। जो अनाप शनाप भेड़िया धंसान चाल चलते हैं उनको आखिर में पछताना पड़ता है। आजकल अक्सर अज्ञानी पंथाई अपने गुरु को तो संत सतगुरु कहते हैं और दूसरे महापुरुषों की निंदा करते फिरते हैं। पहिली हालत अच्छी है। दूसरी बुरी है। यह क्या जरूरत है कि तुम्हारा ही गुरु सबका गुरु हो जाय। जब तुम्हारा बाप सब का बाप नहीं है तो यहाँ सीमित पने का





खयाल क्यों किया जाता है। गुरु एक होता है, यह ठीक है, मगर उसका अर्थ यह कभी नहीं है कि तमाम दुनिया का एक ही मनुष्य गुरु हो। प्रकृति के कारोबार को देखो। एक शिक्षक किसी हालत में तमाम दुनिया के आदमियों को कभी नहीं पढ़ा सकता। अगर तुम कहीं दुनिया में एक ही मनुष्य को ऐसा काम करते देखो, तो हमको भी बता दो। हम अपनी गलती तुरन्त ही मान जायेंगे। याद रहे हमदर्दी, समानता और प्रेम के कानून में भिन्न भिन्न पहलू हुआ करते हैं। एक ही मनुष्य से सबको एक सा लाभ नहीं पहुँच सकता। जिनको भ्रम है वह अत्यन्त अज्ञानी है। गुरु एक करो और बस ! उसकी टेक का अर्थ यही है और इस टेक को सारी उम्र निभाते रहो—

सही टेक है तासु की, जाको सतगुरु टेक ।  
 टेक निभाये उमर भर, रहै शब्द मिल एक ॥  
 जैसी लौ पहले लगे, तैसी निभये ओर ।  
 अपने देह को को कहे, तारे पुरुष करोर ॥

### चौदहवाँ बचन

मुसलमान सूफियों की एक कहावत है कि अमीर खुसरो कवि एक बार वूअलीशाह कलंदर की सेवा में उपस्थित हुये और उनसे शिष्य बनने की इच्छा की। जिस समय दोनों आमने सामने बैठे और दोनों ने हाथ बढ़ाया अज्ञात स्थान से एक हाथ और निकला और उनके हाथों को भटका दे दिया। वूअलीशाह कलंदर ने दूसरी और तीसरी बार जोर लगाकर अमीर खुसरो का हाथ पकड़ना चाहा। फिर अज्ञात हाथ ने रोक दिया। अन्त में वूअलीशाह ने कहा—“खुसरो ! तुमको मुझसे लाभ नहीं पहुँचेगा। मैं मजबूर हूँ। तुम देहली में शाह निजामुद्दीन औलिया के पास चले जाओ।” उन्होंने ऐसा ही



किया और उनके शिष्य हो गये और शिष्य भी कैसे ! कि गिने चुने। यह बात अध्यात्मिक अभ्यासियों की दृष्टि को ऊंचा करने के लिये कही जाती है, ताकि किसी प्रकार के भ्रम में न पड़ें। आजकल अधिकतर पंथाइयों के गुरुओं में चेला बनाने का बहुत रिवाज फैला हुआ है। मुर्गियाँ आ आकर फँसती हैं। उनको शिक्षा दी जाती है कि “देखना इस डिब्बे को छोड़ कर कहीं और न जाना और जितना हो सके दूसरी मुर्गियों को भी फँसा फँसा कर लाते रहना।” इस अमल से और चाहे कुछ हो जाय आत्मिक ज्ञान प्राप्त न होगा। आत्मिक ज्ञान कोई और वस्तु है। इस मुर्ग फंसाव से संस्था बेशक बढ़ जायगी मगर यह दूकानदारी और दुनियादारी है। अधिकारी सोच समझकर कदम उठाये वना अपनी हानि कर बैठेंगे।

### पंद्रहवाँ बचन

देखो निंदा किसी की भी न किया करो। प्रकृति के प्रबन्ध में जो काम व्यक्तिगत रूप से जिसके सुपुर्द हुआ है वह उसी को कर रहा है। उसकी व्यक्तिगत योग्यता को छीनना हमारी शक्ति से बाहर है। वह अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा है। तुम भी अपने कर्त्तव्य का पालन करो। हाँ, अगर प्रकृति ने तुमको निंदा करने का काम सुपुर्द किया है, तब तो कुछ कहना सुनना ही नहीं है, मगर यह बचन हम उन लोगों के लिये कह रहे हैं जिनकी बाबत हमको ध्यान, अनुमान और जानकारी है कि वह निंदा करने के लिये नहीं बनाये गये हैं। उनका काम केवल सत वस्तु का साक्षात्कार करना है। ऐसे आदमियों को भूल कर भी अपने कर्त्तव्य से बाहर न जाना चाहिये अन्यथा उनकी उन्नति रुक जायगी और व्यर्थ ही दूसरों का संस्कार लेकर वह कुछ के कुछ हो जायेंगे। तुम अपने आपको आप ही



आप पहचानों। अपने भावों को आप ही जाँच करो। यदि तुम को असलियत पसन्द दृष्टि मिली है तो निन्दकों की भी निंदा न करो, क्योंकि तुम खास काम के लिये बनाये गये हो। तुम निन्दक नहीं हो। साधारण लोगों की निंदा तो बुरी है ही, संतों, फकीरों और महात्माओं की निंदा तो और भी बुरी है, क्योंकि इनकी निंदा करने से आदमी पापी हो जाता है। यह कभी न कहो कि मेरा गुरु सच्चा और दूसरों का भूँठा है। यह सब विभिन्न रूपों में तुम्हारे ही गुरु के रूप हैं। कोई रूप एक काम कर रहा है। दूसरा कोई और काम कर रहा है।

सबका काम अपनी अपनी जगह पर ठीक है। दृष्टि को दोष देखने वाली क्यों बनाते हो। उनको अपना काम करने दो। जो सूरत तुमको पसन्द आ गई है, तुम्हारे ध्यान और प्रेम के लिये वही काफी है। औरों को बुरा समझकर तुम पतित हुये जाते हो। इस आदत को छोड़ो वर्ना बहुत हानि उठाओगे। अब एक किस्सा तुमको सुनाते हैं जो इस विषय पर काफी प्रकाश डालेगा। किसी देश में एक राजा रहता था जिसमें कुर्हट, दोष निकालने और नुकता चीनी करने की आदत थी। वह सदैव इस बुरी आदत का व्यवहार किया करता था मगर अपने ऊपरी व्यवहार को इतना सुन्दर बना रक्खा था कि सब लोग उसकी प्रशंसा करते थे। संयोगवश उसके देश में किसी सिद्ध पुरुष का आगमन हुआ। लोग उससे लाभ उठाने के लिये आकर्षित हुये। साधू स्वतन्त्र और निस्स्वार्थ था। उसने उस राज्य के बहुत से आदमी चिताये और उसकी शिक्षा से उनके जीवन देखते देखते बदल गये। राजा को भी उसके दर्शन की इच्छा हुई। राजा साधू के पास आया। साधू को नमस्कार किया और अदब से बैठ गया। राजा ने अकेले में उससे पूछा—“भगवन! मेरे जीवन का क्या परिणाम



होगा?" साधू हंसा और बोला कि वह सुनाऊँ या कर दिखाऊँ। उसने कहा कि कर दिखाना कह सुनाने से अधिक अच्छा और प्रभावशाली सिद्ध होगा। साधू ने राजा को अपने पास बिठाया और अपना हाथ उसके सर पर फेरा। चूँकि साधू साधन सम्पन्न था, उसके हाथ लगते ही साधू की विजली की धार राजा के दिल में प्रवेश कर गई और उसी समय उसे बेहोशी आ गई। बेहोशी की हालत में उसकी आन्तरिक आलें खुल गईं। क्या देखता है कि एक बहुत सुन्दर और विशाल भवन खड़ा है। उसके चारों ओर बाग है जिसमें अगणित सुन्दर फूल खिले हुये हैं। जगह जगह पर पानी के झरने और फौआरे चल रहे हैं। क्यारियाँ सब बाकायदा हैं। अनेक हौज हैं जिनमें रंग बिरंगे कंवल खिल रहे हैं। चहचहाने वाले असंख्य पक्षी हैं। दो, चार दस माली हाथों में बेलचे लिये हुये वृक्षों की डालियों की काट छाँट कर रहे हैं। यह उनकी ओर उसी स्वप्नावस्था में आकर्षित हुआ। पृष्ठा यह भवन किसके रहने के लिये है। माली ने उत्तर दिया कि यह आप ही के रहने के लिये नियत है। जब आप अपना भूमंडल का जीवन समाप्त कर लेंगे तब यहाँ आकर निवास करेंगे। राजा ने फिर प्रश्न किया कि बाग में सुन्दर सुन्दर फूल तो बहुत हैं लेकिन यहां खाने पीने का सामान नहीं है।

माली ने जवाब दिया कि खाने की अनेक वस्तुयें अन्दर डेर लगी हुई हैं। राजा ने फिर पृष्ठा कि क्या अन्दर जाकर देख सकता हूँ? माली ने कहा कि आप शौक के साथ चलिये और सैर कीजिये। अन्त में आप ही को तो यहाँ रहना होगा। राजा ने भवन में प्रवेश किया। कमरे साफ सुथरे मेज और कुर्सियों से सजे हुये थे मगर प्रत्येक स्थान पर गिलाजत के डेर लगे हुये थे। उनमें से इतनी दुर्गन्ध निकल रही थी कि नाक में



दम आ रहा था। वह हर कमरे में गया और हर जगह पर यही दृश्य दिखाई दिया। माली से पृच्छा कि यह क्या है। वह बोला कि यह आपके लिये खाने का सामान है। दुनिया में आप इसी की कमाई कर रहे हैं। मृत्यु के पश्चात् यह आपको मिलेगा। कहा गया है “दुनिया आखिरत की खेती है।” जो वहाँ बोओगे, उसकी फसल यहाँ आकर काटनी पड़ेगी। प्रत्यक्ष रूप में आपका बरतावा सबके साथ बहुत अच्छा है। आप बड़े सभ्य हैं, बोल चाल आपकी बड़ी मीठी है। आप जाहिरी हालत को अच्छा बनाकर रखने वाले हैं, मगर आपका मन गन्दा है। आपकी अन्तरीय दृष्टि किसी की भलाई पर नहीं पड़ती बल्कि सदैव बुराई पर रहती है। इसलिये इस भवन का बाहिरी भाग तो अत्यन्त सुन्दर है मगर भीतर के हिस्से में गन्दगी के ढेर लगे हुये हैं और यही आपको यहाँ आकर खाना पड़ेगा।

यह सुनकर राजा को बड़ी व्याकुलता हुई। दिल में डरा। हाथ पाँव काँपने लगे और उसी हालत में आँख खुल गई। साधू जी मुस्कराते हुये बैठे थे। राजा पाँव पर गिरा। भगवन! आपने कर दिखाया। मुझे अपने जीवन का परिणाम ज्ञात हो गया किन्तु वह अत्यन्त दुखदाई है। क्या इससे किसी प्रकार छुटकारा मिल सकता है? साधू ने कहा—“हाँ! यहाँ हर रोग की दवा और हर कष्ट का इलाज है किन्तु शर्त यह है कि रोगी कहने पर चले और वैद्य की राय को ठुकराये नहीं।” महाराज! आप जो कहेंगे मैं उसका अक्षरशः पालन करूँगा। बहुत अच्छा! तो तू अपने पुरोहित की क्वारी लड़की को जबरदस्ती लाकर महल में रख ले और आदर मान के साथ उसका पालन पोषण कर। तेरे कष्ट का बहुत बड़ा भाग कट





दूर हो सकती है। इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है। तू अपने राज्य के एक दो साधुओं को छेड़ देख। यदि वह तेरी निंदा करने लगें तो सरलता से काम बन जायगा। इसके सिवाय इसका और कोई उपाय नहीं है। राजा आज्ञा लेकर महल में आया। साधुओं से छेड़-छाड़ शुरू की मगर ये सब चुप थे। न उसे बुरा कहते थे न भला कहते थे।

राजा ने भरसक प्रयत्न किया मगर उसकी एक न चली। एक बार वह इन साधुओं से मिलने आया। वह उसे देखते ही कह उठे—“राजन् ! सुनो, आपने लोगों के दोष देख देखकर और निंदा करके जो पाप किये थे, उसे तो तुम्हारे निन्दक उठा ले गये, मगर साधुओं की बुराई का पाप तो तुम ही को भोगना पड़ेगा और वह गिलाजत तुम ही को खानी पड़ेगी। साधू तुम्हारी किसी तरह की छेड़ छाड़ से तुम्हारी निन्दा नहीं करेंगे और न इसके वह अधिकारी होंगे। सम्भव है इस छेड़ छाड़ से तुम्हारी ही हानि हो जावे। अपने गुरु से जाकर यह बातें कह देना।” वह चुप होकर चला आया। परम संत कबीर साहब की बाणी है:—

निंदा कबहु न कीजिये, निंदा अघ की खान।  
 निंदा से उपजै सभी, कलह कलेश महान ॥  
 मन दर्पण के बीच में, पर निंदा की द्वार।  
 निर्मलता पल में गई, भर गई धूल विकार ॥  
 अपने आपको देखिये, औरन सों क्या काम।  
 अपने देखे गुण लहै, औरों अवगुण ठान ॥  
 हँस हँस दोष न देखिये, मन घट अगम अनूप।  
 जो या में निंदा भरै, तत्क्षण होय कुरूप ॥  
 साध बड़े परमार्थी, गुण गहि अवगुण त्याग।  
 जो कोई अवगुण गहै, सो मति मन्द अभाग ॥



भौरा बैठा फूल पर, लहै सुगन्ध सुवास ।  
मक्खी विष्टा पर अड़ी, पाय कुगंध कुवास ॥  
जो तू गुरु का दास है, डोजा गऊ का बच्छ ।  
दूध सार सब खींच ले, छोड़ रक्त का पच्छ ॥  
शब्द सार टक साल है, समझ शब्द का सार ।  
साधू माखन चाखिया, छाछ पिये संसार ॥  
अपनी निंदा कीजिये, पर निंदा सों लाज ।  
निज निंदा कारज बने, और से होय अकाज ॥  
ब्रह्मा ने यह जग रचा, अमृत जहर मिलाय ।  
अमृत देव का खाज है, असुर जहर नित खाय ॥  
निंदक तो हिंसक भया, हिंसा करै उपाव ।  
जिभ्या की तलवार से, सदा कलेजे घाव ॥  
जो तू गुरु का सेवका, निंदा दोष मुलाव ।  
जो कोई पर निंदा करै, पड़ै न पूरा दाव ॥  
गुण ग्राही कोई संत जन, अवगुण ग्राही असाध ।  
दोष पराया ना लखै, ताका मता अगाध ॥  
निज निंदा सुन हरषिये, कर निंदक सनमान ।  
बिन साबुन पानी बिना, शुद्ध करै मन आन ॥  
निंदक साँचा मीत है, जीवै आदि जुगाद ।  
निंदा सुन हमने तजा, मन का विषम विषाद ॥  
निज निंदा से जो डरै, सो नही साँचा भक्त ।  
सुन सुन निंदा आपनी, तजै दोष का जक्त ॥  
गुरु टेक दृढ़ कीजिये, सुन निंदा के बैन ।  
जो कोई निज निंदा सहै, मन उपजै सुख चैन ॥  
निंदक तो निंदा करै, हम निंदक को प्यार ।  
सुनकर निंदा आपनी, त्यागा मूल विकार ॥



गुरुमत गुरु का दाम है, निंदक मन चित होय ।  
 निंदक के परशद से, दुरमति गई सब खोय ।  
 गुरु से नित यह माँगूँ, अवगुण तजू बनाय ॥  
 गुण दृष्टी पर गुण लहूँ, राधास्वामी गुण नित गाय ॥

### सोलहवाँ वचन

यह विचार कि अभ्यास के बिना ज्ञान सम्भव हो सकता है, हमको तो कुछ गलत ही जैसा मालूम होता है। पहाड़ की चोटी पर चढ़ने के लिये चढ़ाई करनी पड़ती है और यह चढ़ाई कठिन भी होती है। पहाड़ से उतरने में जिन जिन रास्तों से उतरना पड़ता है चढ़ते वक्त भी उनको फिर तै करना होता है। इसी तरह हमारी सुरत भी ऊपर से नीचे की ओर उतरी है और यहां आकर माया के दल दल में फँस गई है। इससे उसको छुटकारा दिलाने को फिर आत्मा की ऊँची मंजिल में पहुँचना और पहुँचाना है।

यह सब ही जानते हैं कि पैदा होते समय मनुष्य की आत्मा या उसकी धार मस्तिष्क से नीचे उतर कर चोटी से एड़ी तक इस शरीर में प्रवेश कर जाती है और फिर मरते समय वही धार एड़ी से खींच कर चोटी की ओर धीरे धीरे आती है। सुरत शब्द योग के साधन में यही अभ्यास करना पड़ता है। स्वेच्छा से सुरत की धार को खींच कर ऊपर चढ़ना पड़ता है और अंतरीय विभिन्न रूहानी (आध्यात्मिक) स्थानों के हालात या परिस्थितियों से भेंट करना पड़ता है। यह अभ्यास एकदम नहीं किया जाता। धीरे धीरे किया जाता है। धीरे धीरे साधन करने को ही अभ्यास कहा जाता है।

प्राणायाम में केवल प्राण को ऊपर की तरफ बिना समझे बूझे चढ़ाते हैं मगर यहाँ पर स्थान का ज्ञान रख कर केवल





उतर आई और मरने से बच गया। उस समय भी मुझे दर्श्यों और शब्द के सुनने की कैफ़ियत ज्ञात हो गई थी।

### सतरहवां वचन

दुनिया कहती है मरने से दुख होता है मगर मेरा अनुभव विलकुल इसके विरुद्ध है। मैं मर कर जिया हूँ। इसलिये अब मुझे कोई लाख समझाये मैं मरने को आनन्द दायक अवस्था समझता हूँ। यह सच है कि अँगड़ाइयाँ लेनी पड़ती हैं, हाथ पाँव एँठते हैं, आँख से आँसु भी जारी हो जाते हैं और कुछ आदमी कराहते भी हैं मगर यह सब दर्शाये आनन्द देने वाली हैं। कोई यह न समझे कि मरने और जान निकलने के समय पीड़ा या कष्ट होता है।

मर जाने से जग डरै, मेरे मन आनन्द।

कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरण परमानन्द॥

अभ्यास करने से आप ही आप मृत्यु की मंजिलें जीवन में ही पार करने का अवसर हाथ आ जाता है और जिन लोगों ने एक या दो अन्तरीय स्थान पार कर लिये हैं उनको भी कोई कष्ट अन्तिम समय में न होगा। जिसका जी चाहे मर कर देख ले। हाँ, जब तक सुरत का खिंचाव तीसरे तिल के स्थान तक नहीं होता, उस समय तक सम्भव है कि संसार की प्रीति, सम्बन्धियों का विछोह और धन दौलत के छूटने का ख्याल सताये मगर यह दर्शा केवल क्षण मात्र के लिये होती है। आगे चलकर आनन्द ही आनन्द है। हाँ, मन को संयम में करना आवश्यक है।

इस सुरत शब्द योग के साधन कर लेने से जान निकलने का कष्ट अभ्यासी को विलकुल न होगा। यह मैं अनुभव कर चुका हूँ, समझ गया हूँ और अधिकारियों के समझाने बुझाने



के लिये तैयार हूँ।

**प्रश्न**—क्या अभ्यासी और गैर अभ्यासी मरते समय एक ही स्थान को जाते हैं या इसमें अन्तर है ?

**उत्तर**—नियम तो एक ही है, चाहे अभ्यासी हो या गैर-अभ्यासी। मरते समय दोनों की सुरत एक ही रास्ते की ओर आकर्षित होगी। अन्तर केवल इतना होगा कि अभ्यासी ने जिस स्थान को तै कर लिया है, वहाँ पहुँचकर उसकी मृत्यु होगी और वह मरने के बाद ऊँचे स्थानों की ओर चला जायगा। जो अभ्यासी नहीं हैं, उनकी सुरत त्रिकुटी (ओ३म्) के स्थान तक पहुँचकर फिर नीचे की ओर आकर्षित होगी और आँख, नाक, कान, मुँह के मार्ग से निकलेगी या निचली इन्द्रियों या गुदा चक्र की राह से बाहर होगी।

जिस जिस आदमी ने जिस जिस इन्द्रिय का ध्यान रूढ़ कर रक्खा है, उसी की राह से निकलकर उसी प्रकार की यौनि धारण करेगी। जिसको मृत्यु के दृश्य देखने का अवसर मिला है वह गौर करके इसकी सचाई को समझ सकता है। ऐसी घटनायें सबके घरों में हुआ करती हैं।

इस दुनियाँ में यदि स्वाद लेने में किसी ने रुचि रक्खी है तो उसकी सुरत ऊपर चढ़कर जिभ्या की राह से निकलेगी। जिभ्या खिंचकर के मरते समय बाहर निकल पड़ेगी। यदि किसी ने नज़ारा बाज़ी को दिल दे रक्खा है तो इसका जीव आँख की राह से निकलेगा। यदि किसी ने काम भोग को पसन्द कर रक्खा है तो उसका प्राण लिंगेन्द्रिय के मार्ग बाहर आयगा और भी इसी प्रकार समझ लो। जिसको जिस जिस बात की आदत पड़ गई है, उसे उसी उसी तरह के शरीर में आकर नये जन्म धारण करने पड़ेंगे। इन सब की आदत भी



तो एक प्रकार के लगातार अभ्यास ही से बनी है। उनका संस्कार फुरता हुआ वैसा ही तमाशा दिखायेगा। प्रकृति का यह नियम अटल है। हर एक बुद्धिमान इस सचाई को समझ सकता है।

### अठारहवाँ बचन

जिन लोगों का खयाल यह है कि साधन के स्थानों की चढ़ाई आदि कुछ नहीं होती, यह केवल अकली और जबानी जमा खर्च है और केवल ज्ञान की बातें समझ लेने से ही काम बन जायगा, उनको मैं इतना कह सकता हूँ कि जिसको असल में ज्ञान कहा जाता है वह समझने बूझने और प्राप्त करने की वस्तु ही नहीं है। वह तो केवल अपने स्वरूप का नाम है जो हर समय प्राप्त है। मन भ्रम में पड़ा हुआ है और मन की वजह से सुरत भी भ्रम में है। यह भ्रम साधन की चढ़ाई से ही दूर होगा। जब आँख से कोई वस्तु देख ली जाती है उसकी बाबत सब संशय मिट जाते हैं। वैसे ही जब सुरत की ऊँची चढ़ाई हो जाती है और उसके मन के पर्दे फाड़ दिये जाते हैं तो फिर सचाई के जानने और समझने में कठिनाई नहीं रहती। अभ्यास का असली मंतलब मन के पर्दों को फाड़ने का है। मन के पर्दे विचार से भी फाड़े जाते हैं, लेकिन याद रहे कि जब सच्चा और क्रियात्मक विचार होगा उस समय भी सुरत अकारण ही ऊँचे चढ़ेगी। जब तक चित्त की वृत्ति ऊपर की अवस्था से मिलकर एक न हो जायगी तब तक उसका कुछ भी न होगा। असली विचार के समय मन का अन्दर की ओर सिमटाव हो जाता है, आँखें बन्द होने लगती हैं, इधर से बेसुध होने लगता है और चित्त की शक्ति कहीं कहीं जा रहती हैं। यह एक ऐसी सच्ची बात है जिसका समझना कुछ



सुगम है। दोनों का एक सा ही प्रभाव होता है किन्तु साधारण विचार की दशा में न आत्मिक धार का भली प्रकार सिमटाव ही होता है और न स्थानों तक चढ़ाई ही होती है। अभ्यास करने से इसमें सहूलियत हो जाती है और अमली या क्रियात्मक रूप से सुरत की धार अथवा चित्त की वृत्ति को जहाँ लगाया जायगा वह उसी के आकार वाली और तद्रूप हो जायगी और उस जगह का ज्ञान इस तरह स्वयं विलकुल सहूल होता चला जायगा। जीवन भी बदलता जायगा। विचार भी दृढ़ता के साथ स्थिर होगा। वैसे बिना अभ्यास के विचार के दृढ़ होने में कमी रहेगी। सन्तों ने इस वजह से अभ्यास और वैराग दोनों को साथ साथ रक्खा है ताकि काम में असफलता का तनिक भी भय न रहे और अभ्यासी सार तत्व को समझ और जान ले।

यह तो प्रत्येक मनुष्य जानता है कि इस जगत में हर एक वस्तु के लिये एक एक स्थान नियत है। हमारे इसी देह में प्रत्येक अंग और प्रत्येक इन्द्रिय का मुख्य मुख्य स्थान है। मन जब उस अंग या इन्द्रिय पर बैठता है, तब उसे विशेष प्रकार का ज्ञान होता है। अगर मन आँख की जगह पर आकर न बैठे तो देखना असम्भव हो जाय। यदि सुरत की धार को शरीर के किसी भाग से खींच लिया जावे तो यह भाग या अंग उस समय बेकार हो जायगा। उस समय न कान सुन सकेगा न पाँव चल सकेंगे। उसी तरह इस शरीर में ब्रह्म आदि के भी स्थान नियत हैं और सुरत को वहाँ पर पहुँचकर ब्रह्माकार बनना पड़ता है। वहाँ न पहुँचे तो वृत्ति ब्रह्माकार भी कभी न होगी। इसलिये भी सुरत का समेंटना और वहाँ ले जाकर टिकाना आवश्यक है। इसलिये सुरत शब्द के अभ्यास के प्रत्येक स्थान को अवश्य जानना चाहिए और किसी हालत में



भी अभ्यास की ओर से अभ्यासी को बेसुध या बेपरवाह न होना चाहिए वरना सफलता मिलना कठिन होगा।

### उन्नीसवां वचन

सूरज एक देशीय है और अपने रूप की दृष्टि से व्यापक या फैला हुआ नहीं है, मगर किरणों की वजह से अपने मंडल में व्यापक है। इस मंडल में कोई जगह ऐसी नहीं है जहाँ सूरज मौजूद न हो अथवा उसका प्रकाश न पहुँचता हो। इसलिये वह एक देशीय और सर्वदेशीय दोनों ही सिद्ध हुआ। इसी तरह विराट, अव्याकृत और हिरण्य गर्भ सब ही एक देशीय और सर्वदेशीय हैं। जिस वस्तु का प्राकट्य होगा, उसमें इन दोनों अवस्थाओं का होना लाजिमी है। तुम अपने आपको देखो। तुम स्वयं एक देशीय और सर्वदेशीय हो। इस शरीर में तुम्हारे लिये विशेष स्थान है। अपने प्रभाव और धार की वजह से तुम हर जगह फैले हुये दिखाई देते हो। तुम पर ही क्या विशेषता है, जब यहाँ हर एक वस्तु की यही दशा है तो फिर कैसे कोई मान ले कि एक ही वस्तु व्यापक और अव्यापक नहीं हो सकती।

इस वजह से तुमको चाहिये कि सिद्धान्त और नियम का अध्ययन करो और सचाई को समझकर उससे सम्बन्ध पैदा करो। तब ज्ञान होगा। उसके बिना ज्ञान प्राप्त होना नितान्त असम्भव है। इसलिये अभ्यास की आवश्यकता है ताकि तुम को इनका ज्ञान हो जावे और इनका महत्व तुम्हारे हृदयांकित हो जावे। जिस तरह जीव अपने मंडल में सर्व देशीय भी है और एक देशीय भी है, उसी तरह ब्रह्म परब्रह्म और सत्पुरुष तक एक देशीय और सर्व देशीय हैं। जहाँ जीवपना है वहाँ ब्रह्मपना नहीं है; क्योंकि एक अवस्था के रहते हुये दूसरी अवस्था कभी नहीं हो सकती, यद्यपि सूक्ष्म रूप से जीवपने में ब्रह्मपना



मौजूद है। जैसे आकाश पंहिला तत्व है उसी से सब कुछ बना है। सूक्ष्म तो वह है। वही सूक्ष्म रूप में वायु मंडल, अग्नि-मंडल, जल मंडल और पृथ्वी मंडल में मौजूद है। क्या तुम पृथ्वी को आकाश कहते हो? जब तक पृथ्वी को उसका अपना रूप देते हो, तब तक उसे आकाश से भिन्न ही मानना पड़ेगा। विभिन्नता के जगत में प्रत्येक वस्तु की स्थिति या हैसियत अलग है। जब तक उसकी स्थिति पृथक न मानोगे तब तक विचार न फुरेगा। हम यहाँ हर वस्तु को उसी की दृष्टि से देखने के आदी हैं। हर वस्तु को देखते हुये पहिले उसके मंडल पर दृष्टि जमाओ। फिर उसके असल की ओर ध्यान दो। फिर देखो कि अपेक्षा के दृष्टिकोण से जिसको इस समय असल कह रहे हो उसका भंडार क्या है। इमी प्रकार बराबर विचार करते हुये चलने से तुमको असली तत्व का पता मिलेगा और फिर तुम असली तत्वसे मिलने पर सच्चा ज्ञान प्राप्त कर सकोगे जो सुरत शब्द योग के अभ्यास का प्रयोजन है। उसके बिना वह ज्ञान तुमको प्राप्त न हो सकेगा।

### वीसर्वा वचन

तुम ब्रह्म को भी असली तत्व मानते हो। यहाँ तुम्हारी गलती है क्योंकि तुम आकाश को अभी तक जल और पृथ्वी नहीं समझ रहे हो। केवल बुद्धि के दृष्टिकोण से ऐसा कह रहे हो। यह जितनी वस्तुयें तुम इस सृष्टि में देख रहे हो, वह विकार वाली हैं। आकाश की उत्पत्ति अहंकार से हुई है। अहंकार का मंडल आकाश से ऊँचा है। अतः जिस प्रकार यह अहंकार है, उसी प्रकार ब्रह्म का भी हाल है। वह भी विकारी है। अगर ब्रह्म विकारी न होता तो तुम उसे व्यापक न मानते। व्यापक होना गुण है। गुण सदैव विकारी होते हैं।



मैंने तुमको ब्रह्म के तीन रूप दिखाकर बता दिया है कि वह उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के दोष से रहित या बचा हुआ नहीं है। तुमको ऐसे परम सूक्ष्म तत्व की ओर ध्यान देना चाहिये जो सबसे ऊँचा, सबके परे और सबका मूल तत्व है। हमारे समझाने का यह अभिप्राय है।

जब ब्रह्म उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय की सीमा के अन्दर आ गया तो वह किसी हालत में भी मूल तत्व नहीं हो सकता। तुम पिंड देश के धनी हो। ब्रह्म या परब्रह्म ब्रह्माण्ड देश का धनी है। यह दोनों स्थान एक जैसे हैं। जो पिंड है वही अधिक विस्तार के साथ ब्रह्माण्ड है। जो जीव है वही ब्रह्म है। केवल अल्पज्ञता और सर्वज्ञता का उनमें अन्तर है। तुमने पिंड को जिस प्रकार विकारी समझा है वैसे ही ब्रह्माण्ड को भी समझना पड़ेगा, क्योंकि इसमें भी वही विकार है जो पिंड में है। ब्रह्म के आदर्श से न असली मुक्ति सम्भव होगी और न तत्व का भेद ही समझ में आवेगा। जैसे पिंड को छोड़ा है या छोड़ने का संकल्प कर रहे हो, वैसे ही ब्रह्माण्ड को भी छोड़ दो और ब्रह्माण्ड के छोड़ने का साधन करो। इससे भी ऊँचे चले चलो, तब असलियत का ज्ञान प्राप्त होगा। जब तुम उस असलियत तक पहुँच जाओगे, तब तुम आवागमन के बन्धन से छूट जाओगे। सुरत शब्द योग का साधन इसके लिये अत्यन्त लाभदायक होता है। बुद्धि के वाद विवाद में मत पड़ो बल्कि जो बात कही जाती है उसका सार ग्रहण करो। मैंने इसी कारण से ब्रह्म, परब्रह्म, काल और महाकाल आदि सबकी हैसियत या स्थिति, महत्व और वास्तविकता (असलियत) पहिले ही से समझा दी है ताकि यह भ्रम बबाल जान न हो। बुद्धि में अपूर्णता है इसका रास्ता घुमाव फिराव और उलझन का है। केवल बुद्धि से ही यह रहस्य हल न होगा। बुद्धि और



और मन से काम लेते हुये साधन में लगे। अपने जीवन को साधन सम्पन्न बनालो और तब क्रमशः अपने अन्तर अध्यात्मिक (रूहानी) स्थानों को तब करते हुये असल पद की ओर चले चलो जिसे संत राधास्वामी कहते हैं। उस समय तुम सच्चे परमार्थी हो जाओगे और असली परमार्थ की प्राप्ति कर लोगे।

इस बुद्धि के चार रूप हैं—मन, बुद्धि, चित, अहंकार। यह चारों धोखा देने वाले हैं। इन पर भरोसा कभी न करना चाहिये। हां, इनसे काम लेकर अपना आदर्श और इष्ट पद केवल सत स्वरूप या असलियत को बनाना चाहिये। यह सत-स्वरूप अपना आपा है। सुरत शब्द योग की कमाई करते हुये इसी के साक्षात्कार की चिन्ता रहनी चाहिये। जब इसका साक्षात्कार हो जायगा तब कोई भय बाकी न रहेगा। काल रूपी शिकारी हर समय जीवों के पीछे पड़ा रहता और उनकी कमाई को हर समय हड़पता रहता है। कौन जाने वह किस समय पर अपना दाव चला बैठे। इसलिये सत्पुरुष राधास्वामी दयाल ने कहा है:—

“आप आपको आप पिछानों। कहा और नेंक न मानो ॥”

जीवों को चाहिये कि संतों का सतसंग करके बुद्धि और विवेक से परमार्थ के ज्ञान को समझें और साधन में लगे। व्यर्थ बुद्धि और विद्या के भगड़ों में न पड़ें, क्योंकि यह भी काल के अंग हैं। कभी न कभी धोखा दिये बिना न रहेंगे। विद्या बुद्धि के बाहरी व्यवहार से किसी को कभी शान्ति प्राप्त नहीं हुई है और न होती है। आज कलके ब्रह्मवादियों और ब्रह्म ज्ञानियों की काट छांट को देखकर सँभलने की अत्यन्त आवश्यकता है।



## इक्कीसवां वचन

प्रश्न—जीवों को बीमारी क्यों होती है ?

उत्तर—(१) काल और कर्म के कर्जा अदा करने के लिये,  
(२) हृदय और शरीर के अन्दर से गन्दगी के निकालने के लिये,

(३) मल के दूर करने और मन और शरीर को सूक्ष्म बनाने के लिये ।

(४) भूले और भटकों को राह पर लाने के लिये तथा तन्दुरुस्ती, अर्थात् निरोग शरीर, शुद्ध अन्तःकरण और शुद्ध बुद्धि की कदर कराने के लिये । इनकी व्याख्या सुनिये—

जो आदमी जिस राजा के राज्य में रहता है उसको सेवक और आज्ञाकारी होना पड़ता है और उसके राज्य में रहने का टैक्स देना जरूरी बात है । इससे कोई प्रजा बच नहीं सकती । यह प्रकृति का नियम है । जब जब जीव मन, वचन और कर्म से इस कानून के विरुद्ध काम करते हैं उनको सजा दी जाती है । काल इस जगत का राजा है । काल चाहता है कि कोई जीव उसकी आज्ञा के विरुद्ध न चले । उसकी आज्ञा है कि सांसारिक, शारीरिक और व्यवहारिक प्रबन्ध में रुकावट न पड़े । सब लोग समय की पाबन्दी का ध्यान रखकर काम करें, ताकि किसी वर्ग या मंडल के कारबार में बाधा न हो । यह उसका टैक्स और कर्जा है, मगर जीव उसकी आज्ञा का उल्लंघन करते हैं । यही उल्लंघन रोग के रूप में प्रगट होता है ।

काल नाम है समय का । तुम सुबह को उठो, स्नान ध्यान करो और काम काज में लगो । रात को सोओ । अपनी शक्ति का अनुचित प्रयोग न करो मगर जीव नहीं मानते । कभी रात को काम करते हैं और कभी दिन को सोये पड़े रहते हैं ।



इसलिये उनको बीमारी के रूप में सजा दी जाती है। काल चाहता है कि अपनी संतान तथा पड़ोसी आदि से प्रसन्नता और सद्भावना के साथ बर्ताव होता रहे मगर अज्ञानी जीव इस नियम को त्याग देते हैं। उनका हृदय विषैला हो जाता है। इस विष के निकालने के लिये बीमारी आती है।

काल की इच्छा है कि जिस स्थान पर रहो, उसे सुन्दर बनाकर रक्खो ताकि तुम्हारे मन में गंदगी न आये मगर तुम ऐसा नहीं करते। गन्दगी फैलाते रहते हो। गन्दगी का प्रभाव मन पर पड़ता है और उसकी वजह से रोग होता है।

जब तुम मकान वाले हो तो उस मकान को साफ सुथरा रक्खो। यह मकान रखने का टैक्स है। यदि तुम्हारे बाल बच्चे स्त्री और सम्बन्धी हैं तो उनसे प्रेम करो, उनकी सुनो, उनकी सहो और उनकी गलतियों को क्षमा करते चलो। यह बाल बच्चे और कुटुम्ब कबीला रखने का कर्ज है। यदि यह टैक्स तुम नहीं देते हो तुमको कष्ट भोगना पड़ेगा। मन मलीन होगा और रोग ग्रस्त हो जाओगे। अभिप्राय यह है कि ये सब बातें काल कर्म का कर्जा कहलाते हैं।

शरीर और मन के अन्दर से मल या गंदे पदार्थ के निकलने के लिये रोग होता है। वह गन्दे पदार्थ क्या हैं? भ्रम, भूटे विश्वास और हर प्रकार के अशुद्ध और बुरे विचार गन्दे पदार्थ कहलाते हैं।

जिस समय मनुष्य के मन में द्विचिताई तथा संशय के विचार भर जाते हैं, वह अन्दर ही अन्दर खेंचातान और बेचैनी की हालत पैदा करते हैं। मनुष्य भयभीत हो जाता है। भय की वजह से हृदय काँपने लगता है और वह कमजोर हो जाता है। कमजोरी ही पकपकाकर खून को मवाद के रूप में बदल देती है और बीमारी आ जाती है। अब या तो चीरा



लगवाया जायगा अथवा शरीर स्वयं घबराकर उसे अपने अन्दर से किसी न किसी रूप में बाहर निकाल देगा। यह बीमारी के होने का असली कारण है।

(२) जब शरीर में ऐसे गन्दे पदार्थ प्रवेश कर जाते हैं तब दो हालतें होती हैं--

(अ) शरीर या शारीरिक व्यवस्था उनके दूर करने के लिये प्रयत्न करते हैं या

(ब) उनको अपने में शामिल करने या सोख लेने की कोशिश करते हैं। क्या तुम नहीं देखते कि शरीर के किसी भाग में जब कोई अन्य विजातीय वस्तु पहुँच जाती है तो उसे दर्द होता है और वह उसे निकालना चाहता है। यदि वह नहीं निकलता तो उसमें पड़ा रहता है और गाँठ पड़ जाती है तथा फिर तरी या वर्षा ऋतु में अनुकूल सामान पाकर वह उभर खड़ी होती है। यदि आँख में किरकिरी पड़ गई तो उसको सोख लेने वाली रतूवत आँख से निकलनी शुरू हुई। या तो वह किरकिरी बहकर दूर हो जायगी या आँख की पैवन्द बन जायगी। यह काम जिस तरह प्रकृति के समस्त व्यवहार में दिखाई पड़ता है उसकी वही क्रिया हमारे शरीर में होती है। इसी को बीमारी कहते हैं।

(३) गन्दगी या मल का निकलना और शरीर का शुद्ध होना आवश्यक है। तुमने नहाना धोना बन्द कर दिया। शरीर पर मैल जम गया और चर्म के छिद्र बन्द हो गये। अब इस मल के मिलाप से कीटाणु और जूँ पैदा होने लगे। वे अपनी बारी पर शरीर को छानने और खाने लगे। जब तक वह मल को खा न लेंगे, नष्ट नहीं होंगे।

मैंने कश्मीरी मुसलमानों को देखा है। उनकी अधिक संख्या मैली रहती है। यह नहाते धोते नहीं। बहुत से



आदमियों के सिर में गंज का रोग हो जाता है और वह दुखी रहते हैं। सुस्त और निकम्मे हो जाते हैं। यदि वह शरीर को स्वच्छ और पवित्र रखते तो यह दशा क्यों होती। बीमारी की गरज शरीर को शुद्ध रखने की है और तुम जिस हद तक शुद्ध रहोगे, उसी हद तक बीमारी से बचे रहोगे।

गन्दगी या मल की एक दो नहीं, हजारों ही सुरतें हैं। जो अधिक खाता है, अधिक कपड़े पहनता है, अधिक बोलता है वह अपने आप को कभजोर करता जा रहा है। मस्तिष्क को निरर्थक विचारों से भरने, अधिक किताबें पढ़ने और अनावश्यक बातों का ढूँस ढूँस कर भरने से क्या इसमें गन्दगी न आवेगी।

किसी मकान में बिना जरूरत के बहुत से सामान भरकर रख दो। उसमें हवा नहीं समा सकती। कीड़े मकोड़े पैदा हो जायेंगे और उनका विषैला गुण मकान को रहने के अयोग्य बना देगा। यही दशा मन और मस्तिष्क की भी है। जो जितना अधिक पढ़ने से सम्बन्ध रखेगा, सम्भव नहीं कि उसके मस्तिष्क में विकार उत्पन्न न हो।

अनावश्यक सामान ही गन्दा पदार्थ बनता है और गन्दगी उत्पन्न करता रहता है। ऐसे आदमी शान्त नहीं रह सकते। इनके शरीर के कल पुरजे बिगड़ जायेंगे। वह समझ बूझ से खाली रहेंगे। परमार्थ का समझना तो कठिन होगा, वह व्यवहार के योग्य भी न रहेंगे। रोग इन दोषों के निकालने का प्राकृतिक इलाज है। यदि मनुष्य अपने आप सोच समझकर पवित्र नहीं बनता तो बीमारी पैदा होकर उसके पवित्र बनाने का प्रबन्ध करेगी। यह उसके पैदा होने का कारण है।

(४) यह बीमारी कभी कभी भूले भटकों को सच्चाई का रास्ता दिखाती है। एक आदमी है जो दुनिया ही को सब



कुछ समझ रहा है। उसके सामने राम का नाम लो। वह नाराज हो जायगा, क्योंकि मालिक का नाम लेने से उसे चिढ़ है। वह समझता है कि राम के नाम लेने की इमको बिलकुल आवश्यकता नहीं है। 'खूब खाओ पीओ, चैन उड़ाओ' ही उसका ध्येय है, मगर जब बीमारी आती है तब विवशता से उसके मुँह से राम का नाम आप ही आप निकलने लगता है।

उस समय उसको राम याद आता है। जो जातियाँ जाति (कौम) की दृष्टि से दुनिया की पुजारी हो जाती है, दुराचारणों के प्रभाव के इकट्ठा हो जाने के कारण उनमें युद्ध होता है, अकाल पड़ता है और महामारी फैलती है और कष्ट भोगते हैं। तब जाकर फिर ठिकाने पर आते हैं। यह सब रोग हैं जिनके हथारों ही रूप हैं।

(५) जब तक कोई आदमी रोगी नहीं होता तन्दुरुस्ती की कदर नहीं करता। बीमारी ही उसे समझा देती है कि तन्दुरुस्ती भी कोई चीज है। यह तन्दुरुस्ती कई तरह की होती है। शारीरिक व्यवस्था के साथ समता का बर्ताव करना शारीरिक तन्दुरुस्ती है। मन की चंचलता और अशान्ति को त्यागना और एकाम्र चित्त होना मानसिक तन्दुरुस्ती है। मस्तिष्क का भली चंगी दशा में रहना, बेचैन न होना, घबराहट में न आना यह मस्तिष्क की तन्दुरुस्ती है। रोग इस दृष्टि से बरकत की वस्तु है। धन्य हैं वे लोग जो इसको बरकत की वस्तु समझकर इससे लाभ उठाते हैं और भविष्य के लिये सावधान बन जाते हैं।

### बाईसवाँ बचन

जो तू गुरु का दास है, धर चरणन अनुराग।  
जगत लोक मर्याद सों, नहीं द्वेष नहीं राग ॥



सेवक तो सेवा करे, फल की इच्छा नाहि ।  
 जो फल हिन सेवा करे, दास न कहिये ताहि ॥  
 मान बढ़ाई देखकर, भक्ती करे जो कोय ।  
 सो नहीं गुरु का दास है, मान का सेवक होय ॥  
 नहीं इच्छा नहीं कामना, हर्ष शोक नहीं चित्त ।  
 यह लक्षण है दास का, तासों कीजै हित्त ॥  
 गुरु से बढ़कर दास है, दासगन जो होय ।  
 गुरु तारे निज दास को, दास जगत हित सोय ॥  
 दीन भाव निश्चल वृत्ती, स्वारथ की नहीं चाह ।  
 पर उपकार में मन रमा, ऐमा सेवक शाह ॥  
 त्याग जगत की वासना, केवल गुरु की आस ।  
 जामें यह गुण लख पड़े, सोई सच्चा दास ॥

### तेईसवां बचन

प्रश्न—गुरु की सहायता के बिना सुरत शब्द योग अभ्यास का सीखना असम्भव सा है । फिर किस मनुष्य को गुरु करना चाहिये ?

उत्तर—ऐसा पुरुष जो संतगति को प्राप्त हो । यदि यह न मिले तो साधन करने वाले साधू को गुरु करना चाहिये ।

प्रश्न—संत की पहचान क्या है ?

उत्तर—इसका उत्तर देना हमारी सामर्थ्य से बाहर है । जाहिरी पहचान संत मत के ग्रन्थों में वर्णन है ।

साध का निरख आँख और माथा । सत का नूर रहे जिस साथ ॥

यह चिन्ह देख करे पहचान । गुरु पुरे का जिसको ज्ञान ॥

प्रश्न—इसकी व्याख्या कर दीजिये ।

उत्तर—(१) चौड़ा माथा विशाल हृदय होने का चिन्ह है ।



संकुचित माथा संकुचित हृदय की निशानी है। जिसका माथा चौड़ा होगा, वह पक्षपाती, कट्टर और ईर्षालु न होगा। उसमें अध्यात्म की फुरना जोर शोर के साथ होगी। सचाई का तेज चौड़े मस्तिष्क में चमकता है।

(२) आँख से अभिप्राय यह है कि किसी ऐसे मनुष्य को गुरु न करना चाहिये जो अंधा, काना या ऐंजाताना है या उसकी आँख में फुली है क्योंकि बुद्धिमानों का कथन है—

सौ में सूर सहस्र में काना। सबा लाख में ऐंजाताना ॥

अभिप्राय यह है कि जो अन्धा होगा उसमें शील संकोच, और प्रेम प्रीति न होगी। शील, प्रेम, लाज, सदाचार और नम्रता का सम्बन्ध अधिकतर आँखों से है। अन्धे सैकड़ों आदमियों की भीड़ में रहकर उनको तितर बितर कर देते हैं।

काना उसे कहते हैं जिसकी एक आँख हो। वह इतना भगड़ाल और चालाक होता है कि हजारों को अपने दुराचार से छिन्न भिन्न कर देता है। इन दोनों का दर्जा यद्यपि बहुत नीचा है मगर सबसे भगड़ालू ऐंजाताना होता है, क्योंकि यह जन्म ही से अंगहीन है। यह अपनी खराब आदत से लाखों आदमियों के बीच भेदभाव और भिन्नता पैदा कर देगा और सब को दम के दम में अशान्त बना देगा। वह रुहानियत में कभी भी उन्नति नहीं कर सकेगा। सिवाय भगड़ा मचाने के उसका और कोई काम न होगा।

ऐंजाताना उसे कहते हैं जिसकी कोई आँख ऊपर की ओर चढ़ी होगी या एक आँख छोटी और दूसरी बड़ी होगी। यह ऐब या अवगुण का चिन्ह है।

संत या अध्यात्मिक रूप से बढ़े हुये मनुष्य की आँख चमकीली और तेजवान होती है। आँख के ढेले तक में विशेष प्रकार की चमक होती है और वह सब दोषों से रहित होती है।



उसका माथा चौड़ा और तेजवान होता है ।

### चौबीसवाँ वचन

सुरत शब्द योग के अभ्यास से मनुष्य विशाल दृष्टि वाला बनता है। यही विशाल दृष्टि अभ्यास की प्रथम सीढ़ी है। संकुचित दृष्टि वाला किसी हालत में अध्यात्मिक नहीं हो सकता। विशाल दृष्टि क्या है? सबको अपना रूप और अपने को सबका रूप जानना यह विशाल दृष्टि है। यदि किसी में संत मत के बारे में शंका करते देखो तो बुरा न मानो। जिसको शंका न होगी वह क्यों इधर आकर्षित होने लगा। वही तो सच्चा अधिकारी है। उसमें शंका रूपी रोग है। इलाज जब होगा रोग ही का होगा। अगर कोई व्यक्ति राधास्वामी मत को बुरा भला कहता है तो हमको कभी क्रोधित न होना चाहिये किन्तु प्रेम और सद्भाव से उसके आक्षेप को सुनना चाहिये और मौका देना चाहिये कि वह अपने विचारों को प्रगट करदे। तभी तो किसी को समझाने की आवश्यकता होगी। अगर उसकी जवान बन्द कर दी गई तो वह अपने विचार प्रकट करने से बंचित हो गया और तुमको भी अपने विचारों के प्रगट करने का अवसर नहीं मिला।

जो भूला भटका होता है उसी को रास्ते की तलाश होती है। जो भूला हुआ न होगा वह क्यों तलाश करने लगा। उपदेश भूले और भटकों ही के लिये है। अन्धे को रोशनी की, भुके को रोटी की, प्यासे को पानी की और अशांत को शान्ति की आवश्यकता है। जिनमें यह त्रुटि (कमी) नहीं हैं, उनको कोई क्या बेंगा और क्या समझायेगा। एकत्व की शिक्षा द्वैत वादियों के लिये है। जो सच्चाई से अनजान है उसी को जानकार बनाना है। जो पराये हैं उनके हृदय में अपना प्रेम स्थापित करना है। जब तक पराया पन नहीं आता तब तक



एकता और अनुराग की नहीं सूझती। जो बन्धन में नहीं हैं वह नहीं छुड़ाया जा सकता। मुक्ति का अधिकार केवल बन्धन वालों ही के लिये है। यदि कोई साधु संत उनके आक्षेपों को सुनकर क्रोधित होता है तो समझ लेना चाहिये कि वह जिनकी सेवा के लिये आया था उन्हीं को धता बता रहा है। अतः जो आदमी सबसे अधिक विरोधी हो, वही सबसे अधिक तुम्हारे प्रेम का अधिकारी है।

### पञ्चीसवां वचन

जो मनुष्य यह कहता है कि मैं जानता हूँ, वह अज्ञानी है और जो यह कहता है कि मैं नहीं जानता उसको कम से कम अपनी अज्ञानता का तो इल्म है। जानने वाले को जानकारी कराना मूर्खता है, क्योंकि उसमें घमण्ड है। जो अपनी अज्ञानता को प्रगट करता है उसको जानकारी कराई जा सकती है, क्योंकि उसका हृदय रूपी पात्र खाली हो चला है और उसके अन्दर आत्मज्ञान का भंडार भरा जा सकता है।

जिसको कहने की आदत है कि मेरा काम पूरा हो गया, उसका काम तनिक भी नहीं हुआ। वह यों ही बातें बना रहा है। उससे कहो कि थोड़ा सोचे तो सही कि तुमने क्या बना लिया। उद्देश्य तो यह है कि उसके मन में संशय भ्रम तक न रहे। जिसकी यह हालत हो जाती है उसे इशतहार देने की आवश्यकता भी नहीं रहती। वह इशतहार भी दे तो किस बात का दे। वहाँ न सत है न असत। फिर क्या है? कौन जाने, कौन कहे, क्या जाने और क्या कहे।

नाम रूप का जगत काल का चक्र है। जब तक नाम और रूप से सम्बन्ध है तब तक न कुछ हाथ आयेगा और न कुछ मिलेगा। कहने को जो ज़बान पर आये, खूब गला फाड़ फाड़



कर कहते सुनते रहो। मना कौन करता है मगर अन्त में मिला भी तो क्या मिला। इसका उत्तर कोई क्या देगा।

जब कोई इतने ऊँचे चढ़े। रूप रंग रेखा से टरे ॥

जब कोई सतस्वरूप हो गया, तो फिर कुछ भी नहीं कह सकता, क्योंकि उस समय सत और असत की पहिचान ही नहीं रहती। यहाँ आकर सुनना न सुनना, बोलना न बोलना, और देखना न देखना हो जाता है।

जाप मरे अजपा मरे, अनहद भी मर जाय।

सुरत समानी शब्द में, ताहि काल नहिं खाय ॥

जब तक घड़ा पानी से भरता रहता है तब तक खूब शोर मचाया करता है और जब भर जाता है तब आवाज बन्द हो जाती है। अधभरा घड़ा हरकत मिलने से छलकता भी रहता है। इसी प्रकार मन रूपी घड़ा की दशा है।

### छब्बीसवां बचन

संत के मानी हैं शुद्ध होना और तसव्वुफ के मानी हैं पवित्र होना। इन पर गौर करो तब कोई बात समझ में आवे। शुद्धता और पवित्रता में भूँठ और सच दोनों ही को दिल से निकाल कर बाहर फेंक देना पड़ता है। अगर भूँठ गया और सच्चाई रह गई तो अब भी बहुत कुछ कसर बाकी है, क्योंकि भूँठ और सच दोनों आपेक्षिक शब्द हैं। जब तक सच है तभी तक भूँठ है। जब तक भूँठ है तब ही तक सच है। असली शुद्धता तो उस समय होगी जब दोनों प्रकार के भ्रम मन से मिट जायेंगे। जब तक कोई देखता है वह अंधा है। जब देखने का क्रम बन्द हो जाता है तब ही असली दृष्टि आती है। जब तक कोई सुनता है वह बहरा है। जब सुनना जाता रहता है तब ही सच्ची सुनाई आती है। यही दशा दूसरी इन्द्रियों की



भी होती है।

गुंघु बोले मधुरी बाणी, शब्द शब्द विस्तारा।  
 लँगड़ा चढ़े शिखर पर्वत पर, घाटी शैल अपारा ॥  
 बिना नैन के अंधा देखे, भाँति भाँति की रचना।  
 मन नहीं बुद्धि नहीं कान नहीं, सुनें अगमके बचना ॥  
 बिना सूर के विमल प्रकाशा, बिन बादल की बरसा।  
 बिना रूप का सत्गुरु पाया, चरण कंवल निज परसा ॥  
 नहीं बिन नहीं ढोल-बाँसुरी, बाजें अद्भुत बाजे।  
 रोम रोम सोहंगम सत् सत, शब्द अनाहद गाजे ॥  
 पंथ अपंथ का मिटा भमेला, कौन निभै पंथाई।  
 राधास्वामी चरण शरण बलिहारी, मिली सत्गुरु शरणाई  
 जब तक कोई भी वासना या कामना दिल में बाकी है तब तक असलियत हाथ नहीं आती। यह संत मत की शिक्षा का सारांश है। इसका आदर्श मुक्ति भी नहीं है, किन्तु यथार्थ रूप में यदि हम इसको निष्कामता ( बेख्वाहिशी ) कहें तो शायद अधिक उपयुक्त होगा। परमसंत कबीर साहब की वाणी है:—

चाह मिटी चिंता गई, मनुआ बे परवाह।  
 जाको कछू न चाहिये, सोई शाहँ शाह ॥

### सत्ताइसवाँ बचन

बहुत सी बातें ऐसी हैं जो कही जा सकती हैं और बहुत सी ऐसी हैं जो कहने में नहीं आ सकती। यदि मैं उनको खोल-खोलकर कहूँ तो किसी को विश्वास नहीं आयेगा। वह न केवल असाधारण है किन्तु अधिकतर लोगों के अनुभव में नहीं आई हैं। मैं चाहता हूँ कि जो कुछ मैंने अनुभव किया है उन्हें सब अभ्यासियों के लिये कह दूँ। जो बात हम समझना चाहते हैं



वह आत्मा की बाबत है, मगर यह विषय इतना कठिन और वर्णन से बाहर है कि बहुत कम आदमी इसे समझ सकते हैं। यहाँ तक कि फिलॉसफर और विद्वान तक हैरान हैं कि यह क्या है? कोई मनुष्य साफ साफ नहीं कहता और कहै भी तो किस तरह। जो वस्तु मन बाणी के परे हो, जिससे मन बाणी पैदा हुई हों, जिसके आधार पर मन बाणी रहते हों, उसका वर्णन करना सरल तो नहीं है। जब तक कि मन अति सूक्ष्म न हो जाय, उसमें आत्मा की झलक तक नहीं पड़ती और झलक पड़ने पर भी वह गो मगो का विषय बना रहता है। कोई बात स्पष्ट नहीं होती।

सूफी इसे अमरे रब्बी कहते हैं। वेदान्ती इसको परम तत्व मानते हैं। सांख्य बे इसे पुरुष कहा है, मगर यह शब्द सब के सब ऐसे हैं जो समझ में नहीं आते और इनमें से किसी एक से भी यह ज्ञात नहीं होता कि यह क्या वस्तु है। कठिनता यह है कि उस पर वस्तु होने का विश्वास भी तो नहीं होता।

अगर वह अमरे रब्बी है, तो उसका रूप क्या है? अगर वह परम तत्व है तो वह प्रगट कैसे होता है। अगर वह पुरुष है तो उसकी बाबत यह भी कहा गया है कि वह कर्ता धर्ता कुछ भी नहीं है। फिर वह पुरुष क्या हुआ? और किसी ने उसको कैसे जाना? नैयार्थिक उसे आत्मा अर्थात् गति मान और सोचने वाला मानकर उसमें इच्छा, ज्ञान, सुख, दुख, प्रयत्न राग-द्वेष आदि बताता है। लेकिन जब इन सब गुणों पर सूक्ष्म दृष्टि से ध्यान किया जाता है तो यह सब शब्द इस रहस्य को इतना पेचीदा बना देते हैं कि गुत्थी सुलझने में नहीं आती। सबने प्रयत्न किया मगर उस तक किसी अंश तक कोई पहुँच सका है तो वह केवल वेदाँत कहा जा सकता है। बौद्धों में से अनेकों ने उसे शून्य मान लिया है। वेदाँत कहता है कि वह सत है





पहिले अन्तःकरण को शुद्ध कर लेते तब सम्भव था कि अपने आचार्यों की शिक्षा का अनुभव कर लेते मगर साधन चतुष्टय की ओर किसी का ध्यान तक नहीं जाता। सब बातें बनाना तो जान गये, तर्क वितर्क की सूझ गई मगर पल्ले किसी के कुछ भी न पड़ा और उपनिषदों के अभिप्राय की व्याख्या में बाधा पड़ी। सम्भव है कि करोड़ों में से किसी एक को असली ज्ञान होता है मगर यह नहीं के बराबर है।

इसी कारण से संतों ने अभ्यास (साधन) और वैराग्य (संस्मृति) की प्रथा चालू की ताकि अंतःकरण की शुद्धी भी होती चले और क्रमशः ऊँचे की ओर चढ़ाई करने से अनुभव भी बढ़ता जाये। उस समय इस आत्मा की समस्त स्वयं आजायगी। पन्थ के जारी करने से उनका यह उद्देश्य है। उन्होंने न केवल वेदान्त ही के मसलों को माँझा दिया है किन्तु योग आदि की कठिनाइयों को भी बहुत सरल बना दिया है।

सन्तों का कथन है कि वह है, उसके होने में ज़रा भी सन्देह नहीं है, मगर यह है पना स्वयं ही उसी का तत्व या अंश है। है और हैपना दो होते हुए दो भागों में प्रगट हुए। 'हैपना' 'है' के नीचे उस 'हैपने' में जो 'है' प्रतिबिम्ब हुआ, उससे काल की उत्पत्ति हुई। इस तरह काल और आदि माया के नीचे के लोक में दो रूप हुए। ये दोनों रचना करने के नाम थे। तब उन्होंने उसी 'है' की ओर रख किया। उससे बीज रूप तवज्जह को लेकर उस तवज्जह से इस रचना का प्रबन्ध किया और धीरे धीरे इस तरह ब्रह्म और माया प्रगट हुए। वह फिर से उतरकर पुरुष और प्रकृति बने और संसार की रचना होती गई जैसा कि ऊपर के बचनों में वर्णन है। सन्त मत के अभ्यास की चढ़ाई के जो स्थान बताये गये हैं वह वास्तव में इस रचना के विभिन्न और असंख्य रूप हैं।



रख करने में गति थी। चूंकि गति करने में चढ़ाव, उतार और ठहराव था, इसलिये उसमें तीन गुण—सत, रज, तम मौजूद थे, जो त्रिकुटी स्थान में प्रगट हुये और वहाँ से प्रत्यक्ष रूप में मन और माया का व्यवहार चालू हुआ। मन असल में माया के मसालों से बनी हुई वस्तु है। तबज्जह में हैपने का बीज था। उसी “हैपने”केबीज से यह समस्त और अगणित आत्मायें बनने लगीं जिनको हम जीव कहते हैं। संत मत के शब्दों में इसलिये जो शब्द इस आत्मिक व्यक्तित्व के लिये मौजू (उपयुक्त) है वह सुरत है। सुरत तबज्जह को कहते हैं और इसी सुरत को असली या फर्जी बन्धन या जन्म मरण होता है और सुरत शब्द योग के अभ्यास करने से उसको मुक्ति मिलती है।

### अट्टाईसवां बचन

सुरत का उतार ज्यों ज्यों क्रमानुसार नीचे की ओर होता गया, उसी तरह यह अनेकता का जगत प्रत्यक्ष होता गया। यह कैसे हुआ? पुरुष में विचार उत्पन्न हुआ और स्त्री से मिला। उसके दिमाग से बीज उतर कर स्त्री के गर्भ में आकर ठहरा। वहाँ से वह बाहर निकलकर उसके आकार में प्रगट हुआ और उसने अपनी बारी पर उसी क्रिया को करते हुये अपनी जाति को बढ़ाया। जो वस्तु पहिले दिमाग से निकली थी वह बीज ही थी और वह बीज बूंद रूप था। एक पुरुष की बूंद से मानव जगत प्रगट हुआ। इसी तरह और रचना की बाबत भी समझ लो। पहिले इन सबकी उत्पत्ति मानसिक जगत में हुई थी और फिर दृश्यमान जगत में प्रगट हुई। सारा जगत विराट पुरुष में है। उसी से इन सबकी उत्पत्ति हुई। उसके रूप में तमाम तत्व और चराचर जगत, जीव जन्तु, अंडज,



पिंडज, स्वेदज, स्थावर सब ही मौजूद हैं। अगर यह उसमें न होते तो फिर प्रगट भी न होते।

संतों का कथन है कि जिस तरह नियम पूर्वक सुरतों का भिन्न भिन्न मंडलों से क्रमशः उतार हुआ है उसी तरह अगर यह सुरत शब्द योग करके अपने अन्तर में चढ़ाई जावे तो ज्यों ज्यों यह ऊँचे स्थानों में पहुँचती जायगी, उसी तरह वनको स्वयं उनका ज्ञान होता जायगा। जब यह सुख सब दर्जे या स्थानों को तय करके उस 'है' रूप असली तत्व से संबन्ध वृत्पन्न करलेगी, मन माया नीचे रह जाँयगे और वह बन्धन से मुक्त हो जायगी और 'है' के सिवाय उसका कोई रूप न रहेगा। यह इस योग का प्रयोजन और असली उद्देश्य है। इसके अभ्यास से फिलोसफी के बिना ज्ञान भी स्वयं प्राप्त हो जायगा और मुक्ति भी मिल जायगी। यह बिल्कुल अमली (क्रियात्मक) मार्ग है। जो साधन करेगा उसे आप किसी दिन अनुभव हो जायगा। साधन के बिना इसका समझ में आना कठिन है।

जो लोग यह कहते हैं कि आत्मा निर्लेप है और हमको किसी साधन की आवश्यकता नहीं है, वह बहुत अज्ञानी हैं। उनके शब्दों पर जाने की आवश्यकता नहीं है। उनके जीवन व्यवहार उनकी दंत कथा के झुठलाने के लिये काफी हैं। जब वह साधन करके खाते पीते, विद्या पढ़ कर समझते समझाते और कर्म के द्वारा हर प्रकार की अवस्था प्राप्त करने के उन्मत्त बने रहते हैं तो क्या असली ज्ञान ही के लिये साधन की आवश्यकता नहीं है और अन्य सबके लिये वह जरूरी है। आत्मा निर्लेप और स्वतन्त्र अधश्य है। क्या यह निर्लेपपने और स्वतंत्रपने का ज्ञान साधन के आधीन नहीं है? जिस तरह साधन से विचारों के प्रगट करने की योग्यता आई है उसी



तरह साधन करते रहने से और कर लेने से आत्म ज्ञान की प्राप्ती होगी। यह ज्ञान अंतःकरण की शुद्धि से आयेगा। अन्तःकरण के शुद्ध किये बिना असलियत की छाया इसपर न पड़ेगी। अब इस अंतःकरण की शुद्धि के विषय पर ध्यान दो। यह तो सबको मालूम है कि मन इस शरीर के जिस जिस इन्द्रिय के घाट पर बैठना है उसी उसी घाट पर उसको उसका ज्ञान होता है। बिना इंद्रियों के घाट पर उतरे हुये उसे ज्ञान नहीं होता। इसी तरह जब यह अपने अन्दर विराट; अव्याकृत हिरण्य गर्भ, परब्रह्म, सतपद आदि के घाट पर चढ़ेगा तब ही तो उसे ज्ञान होगा। चढ़ाई के बिना ज्ञान का होना कैसे सम्भव है। उसे इन सब स्थानों पर चढ़कर अपनी शुद्धि करनी होगी। नीचे के ज्ञान को भुलाकर और ऊँचे के ज्ञान को प्राप्त करना होगा। जब वह सत पद में पहुँचेगा, तब ऊँचे नीचे दोनों प्रकार के ज्ञान से बेताल्लुकी हो जायगी और शुद्ध सुरत रह जायगी। वह सत पद से मिलकर एक हो रहेगी। यह ज्ञान और मुक्ति की संतों के विचार से सुदम व्याख्या है।

### उन्तीसवां बचन

सुरत नाम है तवज्जह का। तवज्जह में ख्याल, ख्याल का प्रयोजन और ख्याल की धार तीनों चीजें शामिल रहती हैं। जिस समय महाकाल पुरुष सत पद की ओर रुख करके रचना करने का इच्छुक हुआ, यह सुरतें बीज रूप में उसे वहाँ से मिलीं और वह जिस धार पर चढ़कर सत लोक से नीचे उतरी, वह शब्द की धार थी। यह शब्द उस जगह से उतरते समय दूसरे रूप का था। इससे जो आवाज पैदा हुई वह भी विशेष रूप की थी। भँवर गुफा में आकर चूँकि काल पुरुष ने सुरतों को नीचे गिराना चाहा वह आवाज उसी तरह की थी जैसे



बाँसुरी के छिद्र में दम फूंकने के समय पैदा होती है। फिर यह उतर कर सुन्न महासुन्न में दाईं बाईं ओर घूमने के कारण से रारंग मारंग के रूप की हो गई। वहाँ से यह त्रिकुटी में उतर कर समाई। यहाँ ब्रह्म पुरुष के थपथपाइट के कारण आत्मा के रूप में प्रगट हुई, जैसे मृदंग की धुन होती है और फिर नीचे विराट के जोर देने और नीचे की ओर फूँके जाने से शंख और घंटे की ध्वनि में प्रगट हुई। शब्द ही सुरतों को उतारता हुआ नीचे की ओर उतरा और सुरतों के मेल और स्थानीय धनियों के जोर लगाने के कारण से शब्द से सुरत और सुरत से शब्द प्रगट होता गया और बीज अपनी जाति को बढ़ाता हुआ नीचे चला आया। रचना इसी तरह से हुई है वृहदारण्यक उपनिषद् के जिस ब्राह्मण भाग में नीचे पंच अग्नि विद्या का वर्णन आया है उसमें किसी हद तक इस शब्द के विषय पर संकेत रूप में प्रकाश डाला गया है मगर वह बाकायदा नहीं है, क्योंकि उपनिषदों में जो विचार प्रगट किये गये हैं, वह सब कायदे (तरतीब) के साथ नहीं हैं। उस समय में उतने ही प्रगट करने की मौज और मसलहत थी। अब सतपुरुष राधास्वामी दयाल ने दया करके शिक्षा की तरदीन नियम पूर्वक दे दी है।

इस तरह सुरतें त्रिलोकी में आकर फंस गईं और माया न तीन शरीर, पंच कोष और चौदह इन्द्रियों के गिलाफों में उनको बन्द कर दिया। निकलने का कोई ढंग दिखाई नहीं दिया। ऋषियों ने पंच अग्नि विद्या का उस समय के अधिकारियों के लिये विधान किया था और बताया था कि सिर में अगर तुम पंच अग्नि को धारण कर सकी और एक के बाद दूसरे का त्यागन करते जाओ तो सहज में तुमको छुटकारा मिल जायगा।



कुछ दिनों इस अभ्यास का अंतर में साधन भी होता रहा। फिर बाहर मुखी लोगों ने इस पंच अग्नि की बाहिरी व्याख्या करके उस गुप्त रहस्य को और भी गुप्त कर दिया जिसका वर्णन संकेत रूप में मुंडक उपनिषद् में आया है। 'मुंड' नाम है सिर का और 'क' नाम है ब्रह्म का। सिर में ब्रह्म का पाँच प्रकाशों का धारण करना। मुंड (सिर) में पंच अग्नि के प्रगट करने का विधान है मगर यह नियम या साधन इतना गुप्त रक्खा गया है कि अब सिवाय अभ्यासियों के और किसी को भी इसका ज्ञान नहीं है। यह पंच अग्नियाँ क्या हैं? मुझसे सुनो। वह ज्योति निरंजन, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न और भँवर गुफा आदि का प्रकाश है जो अभ्यासी अभ्यास करते समय इन स्थानों को मानसिक गर्मी दे दे कर प्रगट करता है। संतों ने इसी को पाँच नाम का सुमिरन (स्मरण) करना कहा है। पाँच तरह के प्रकाशों के साथ पाँच तरह के शब्द भी प्रगट होते हैं जिनका जिक्र ऊपर आगया है। गुरु नानक साहब का कथन है—

पंच शब्द धुनकार धुन, बाजे शब्द निशान।

और सतपुरुष राधास्वामी ने कहा है—'पाँच नाम का सुमिरन करे।'

परमसंत कबीर साहब की भाषी है—

गुरु माथे से उतरे, शब्द बिहूना होय।

ताको काल घसीटिहै, रोक सके ना कोय ॥

### तीसवाँ बचन

चल सुरत सजनी अब निज देस। गुरुराधास्वामी ने दिया उपदेश।  
तज माया का भ्रम स्थान। ले सत्संग में गुरु का ज्ञान ॥



यहाँ दुख सुख व्यापत नित्त । काल कर्म को दे मत चित्त ॥  
जब से भूली अपना देश । सहन लगी बहु कष्ट क्लेश ॥  
धूप छाँह मिल रचा पसारा । काल पुरुष गले फाँसी डारा ॥  
चार खान में पचती मरती । बोझ करम का सिर पर धरती ॥  
सत्तपुरुष ने कृपा धारी । अब चलने की कर तैयारी ॥  
चली सुरत जब घर में अपने । जगत भाव लगे होने सुपने ॥

—०—

सहस कमल पहला स्थाना । जोति निरंजन रूप लखाना ॥  
अद्भुत लीला अचरज खेल । शिव शक्ती ने कीन्हा मेल ॥  
प्रगटी जोत जोत में जोती । अद्भुत हीरे पन्ना मोती ॥  
रंग रंग के फूल खिलाने । चहुँ दिशि भँवर कुंड मँडराने ॥  
श्याम कुंज फुलवारी शोभा । देख देखकर मन अति छोभा ॥  
घण्टा शंख की धुन सुन पाई । सुन सुन तेहि सुरत मुसकाई ॥  
ताहि छोड़ आगे को बढ़ी । त्रिकुटी गढ़ की सीढ़ी चढ़ी ॥

—२—

अब आई सुरत इस धाम । निज श्रवण सुने वेद कलाम ॥  
ओशम ओशम की धुन जहाँ गाजी । ताल मृदंग पखावज बाजी ॥  
लाल रंग की प्रगटी जोत । खुल गया वेद ज्ञान का सोत ॥  
त्रिगुण ब्रह्म की जहाँ ठकुराई । प्रति धुन साँस वेद ध्वनि आई ॥  
वेद शब्द है ब्रह्म की साँस । जाने से होय भ्रम का नास ॥  
बीज मन्त्र गुरु ने जब दीन्हा । सार वेद आप ही लख लीन्हा ॥  
ब्रह्म साँस में साँस मिलाया । भेद त्रिकुटी का सब पाया ॥  
लाल रंग सोने की लंका । जो यहाँ चढ़ै मिटै घट शंका ॥  
मेघनाद धुन अचरज बाणी । सुन पाई सन्गुरु सहदानी ॥  
कुछ दिन किया तहाँ विसरामा । फिर आगे चली सुरत सुलताना ॥

—०—



ब्रह्म रेंद्र का शिखर अनूपा । बादल सेत रंग बहु रूपा ॥  
 चन्द्र जोति छबि विमल प्रकासा । सुन्न नगर में अजब उजासा ॥  
 मानसरोवर क्रिया स्नान । हँस रूप भई सुरत सुजान ॥  
 आगे निरख घोर अधियारा । गुरु बल ले पहुँची तिस पारा ॥  
 चार गुप्त बाणी पड़ी कान । भूम चली सुरत बलवान ॥  
 सुन सुन धुन लगी गहरी तारी । देह गेह सुध भूली सारी ॥  
 नहीं तहाँ पुरुष नहीं तहाँ नार । एक रूप तहाँ हंस क्रतार ॥  
 जो कोई इतने ऊँचे आवै । पुरुष नार का चिन्ह मिटावै ॥  
 ह्यान गंग की धार नहाय । त्रिवेनी लख बल बल जाय ॥  
 मेल छुटे अज्ञान नसाये । सहज चन्द्र की क्रांती उजाये ॥  
 कुछ दिन सुन्न महा सुन्न तारी । फिर आगे की कर तैयारी ॥

—०—

भँवर गुफा की खिड़की आई । मिल मिल जोत देख हरषाई ॥  
 सोहंग सोहंग सुनि मृदु बाणी । हर्षि हर्षि सुरत मगनानी ॥  
 कोटि काम छबि लाजै देख । नहिं वहाँ पंडित नहिं वहाँ सेख ॥  
 भाप रूप माया की छाया । सुखी सुरत भव भरम मिटाया ॥  
 बाजी बंसी परम सुहावन । मन भावन हिया जिया ललचावन ॥  
 महा काल का यह स्थान । भँवर गुफा ताहि संत बखान ॥  
 माया काल का पाया भेद । अब नहीं व्यापै भव का खेद ॥  
 पा भेद चली सुरत भूम । मस्ती हर्ष की मच रही धूम ॥

—०—

सत पद पहुँची सुरत मस्तानी । मलिन मेल मन से अलगानी ॥  
 सत सत हक हक बीन विलासा । अद्भुते शोभा अजब तमाशा ॥  
 कोटिन सुर चन्द्र अधियारा । जोति सोत को बरखौं पारा ॥  
 सुरत-निरत भई शुद्ध अनूप । अब न सतावै भव भय कूप ॥  
 नासा संस्कार का बीज । नहीं वहाँ दसमी नहीं वहाँ तीज ॥



कर्म काट भव द्वन्द मिटाई । निज सरूप लख भेद भुलाई ॥  
 अगम अलखके पार सिधारी । राधास्वामी चरण शरण बलिहारी ॥  
 जो कोई या विधि करै चढ़ाई । काल जाल से बाहर आई ॥  
 आवागमन का टाट समेटे । सेज निर्वाण में जाकर लेटे ॥  
 धुर पद संतन वरणा ताहि । पाय रंक हुये शाहंशाह ॥

—०—

क्या कहा जाय कहने सुनने का यह विषय नहीं है । इसे जान कर सब कुछ भूत जाना पड़ता है । फिर इसका भी ज्ञान किसे रहता है । ज्ञान तत्व मन और बुद्धि का धर्म है । मन और बुद्धि दोनों ही माया से पैदा हुए हैं । जब रूह ऊँचे चढ़ जाती है तो यह दोनों नीचे रह जाते हैं । फिर किस का ज्ञान और किसका ध्यान । अगर उस पद को स्वयं ज्ञान मान लिया जाय तो दूसरी बात है, मगर जिस ज्ञान से यह सब जाना जाता है और जिसके सहारे यह सब जानना पहचानना है, उसे कैसे और किससे समझे । यही कारण है कि प्रायः पूर्ण और पहुंचे हुए संत चुप हो रहते हैं । वह कहें भी तो क्या कहें । संतों ने उसे इशारे से समझाया है—

गूंगे का गुड़ समझ लो, केहि विधि कहै बखान ।  
 सुद्धि बुद्धि सहजे गई, पाये पद निर्वाण ॥

—०—

तृतीय भाग समाप्त



## त्रिनती

धन्य धन्य गुरु परम सनेही, धन्य दीन हितकारी ।  
धन्य कृपाला सहजदयाला, भव भय मेंटन हारी ॥  
लीला अगम अपार, अद्भुत क्या कोई जाने ।  
ऋषि मुनि योगी पना न पावें, ज्ञानी नहीं पहचाने ॥  
अगुण सगुण के मध्य विराजै, नहीं ब्रह्म नहीं माया ।  
रूप अरूप के वरे परे तुम, नहीं प्रकाश नहीं छाया ॥  
सब में व्यापी तुम्हरी सत्ता, सत्त असत्त के पारा ।  
मन वाणी की गम नहीं तुममें, सब में सबसे न्यारा ॥  
क्या कह करूँ तुम्हारी त्रिनती, अजर अमर अविनासी ।  
निरालम्ब सबका आधार, चेतन घन सुखरासी ॥  
गो गोचर जहां तक मन जाई, सो नहीं देश तुम्हारा ।  
माया काल के परे ठिकाना, क्या कोई बरगै पारा ॥  
तत्व अतत्व असार सार नहीं, शब्द सुरत नहीं होई ।  
संत कहें तुम शब्द रूप हो, और अशब्द गति सोई ॥  
ऊँची दृष्टि करे जब प्राणी, सार भेद कुछ पावे ।  
भेद पाय शरणागत आवे, आवागमन मिटावे ॥  
दया करो करुणा चित लाओ, बरुशो भक्ति विवेका ।  
राधास्वामी चरण शरण बलिहारी, रहूँ शब्द मिल एका ॥



## कर्म भोग या मौज

भविष्य में क्या होगा

(लेखक परमसंत दयाल फकीर साहब)

कई सज्जन मुझसे सवाल करते हैं कि बताइये भविष्य में क्या होगा। मैं हँसता हूँ और कहा करता हूँ कि मैं न ज्योतिषी हूँ न योगी हूँ। हाँ, इतना जानता हूँ कि जो होना है वही होगा, अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि होना क्या है।

होना, होनी या भावी एक प्राकृतिक नियम है। मैं धूप में बैठा हुआ इस समय लिख रहा हूँ। धूप के कारण गर्म हो रहा हूँ। सर्दी दूर हो गई है। इसी प्रकार जिस वातावरण में हम इस समय हैं इसका परिणाम अवश्य होगा। किसी को इल्म होता है, किसी को नहीं, मगर होना वही है जो हमारा वातावरण है। जिस प्रकार का हमारा जीवन है उसी प्रकार का परिणाम होगा। विष खाओगे तो उसके प्रभाव से बच न सकोगे। तुलसीदास जी का कथन है:—

कर्म प्रधान विश्व करि राखा।

जो जस कीन्हसो तस फल चाखा ॥

यद्यपि हम किसी सीमा तक स्वतन्त्र अवश्य हैं मगर मेरे अनुभव ने यह विश्वास दिलाया है कि हमारे कर्म किसी और शक्ति के आधीन हैं। सवाल पैदा होता है कि वह शक्ति कौनसी है? उसका उत्तर यह है—

मनुष्य के शरीर में अनेक प्रकार के कीटाणु रहते हैं। वह हमारे शरीर में पैदा होते, खाते, पीते, जीवन बिताते और मरते रहते हैं। जब किसी खास प्रकार के कीटाणुओं की अधिकता हो जाती है तो हम दुखी और रोगी हो जाते हैं



और औषधि खाकर इनको कम कर देते हैं। क्या कभी हमको यह खयाल आया है कि हमारे इस इलाज से हजारों कीटाणु नाश हो जायेंगे। नहीं ऐसा नहीं होता। इसी प्रकार यह पृथ्वी, जिसमें हम सब जीव जन्तु बसते हैं इसी में पैदा होते और मरते हैं, एक बड़ा जीव है। इसके अन्दर जान है, मन है, बुद्धि है। यह पृथ्वी सोती है और जागती है। इसी दृष्टि से इसको धरती माता कहते हैं। शास्त्रकार इसके सोने जागने आदि को सिद्ध करते हैं। इसके शरीर में हम सब प्रकार के जीव कीटाणुओं की हैसियत रखते हैं। जिस प्रकार खास किस्म के कीटाणु हमारे अन्दर उत्पन्न होकर हमारे शरीर और मन को निरोग नहीं रहने देते और हम दुखी होते हैं, इसी तरह हम सब मनुष्यों जीव जन्तुओं आदि से ये पृथ्वी भी दुख सुख भोगती है और दुखी होकर स्वयं इलाज करती है ताकि वह सुखी हो जाय। इस कुदरती इलाज से भिन्न भिन्न प्रकार के अयोग्य जीवधारी पशु पक्षी आदि नाश को प्राप्त होते हैं और योग्य जीवधारी उत्पन्न होते रहते हैं।

प्रश्न—क्या इस बात का कोई प्रमाण है कि पृथ्वी दुखी सुखी होती है ?

उत्तर—वर्तमान साइंस ( विज्ञान ) इसको सिद्ध करती है। इसके सिद्ध करने वाले हमारे भारतवर्ष के मिस्टर घोष थे, जिन्होंने अपने परीक्षणों और निरीक्षणों से सिद्ध किया है कि वनस्पति आदि हँसते रोते, गाते और गर्भाधान करते हैं। चूंकि उनकी उत्पत्ति पृथ्वी से हुई है, इसलिये पृथ्वी भी हँसती रोती और दुखी सुखी होती है। हिन्दू धर्म शास्त्र तो यहाँ तक कहते हैं कि पृथ्वी जब अधिक दुखी हुई तो उसने विष्णु भगवान से अपना दुख रोया। इसके भार को उतारने के लिये भगवान ने राम या कृष्ण के रूप में प्रगट होकर राजसों का



नाश किया। राक्षस वह है जो अपनी रक्षा को मुख्य रखता है और उस कर्म में दूसरों को परवा नहीं करता। इसलिये मेरी समझ या अनुभव में यह आया है कि हमारे शारीरिक और मानसिक जीवन पर इस पृथ्वी के जीवन का प्रभाव पड़ता है और हमारे कर्म, व्यवहार, भाव और विचारों का प्रभाव पृथ्वी पर पड़ता है। यह इसी तरह होता है जिस तरह हमारे अन्दर के कीटाणुओं का असर हमारे स्वास्थ्य पर पड़ता है और हमारी बजह से ये कीटाणु कायम रहते हैं। इस अनुभव के आधार पर साहस पूर्वक कहता हूँ कि चूँकि मानव जाति के अन्दर घरेलू, सोशल और राष्ट्रीय रूप से ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, लालच, बुर्ज, कीना आदि बहुत अधिक बढ़ गयी है इसलिये यह पृथ्वी दुखी और अशान्त है और प्राकृतिक रूप से ऐसा इलाज होगा कि ईर्ष्या, द्वेष आदि के तत्त्व कम हो जाँय।

प्रश्न—वह कैसे कम होंगे ?

उत्तर—भूचाल, अकाल, युद्ध, बाढ़ आदि द्वारा ताकि उनके फलस्वरूप कुछ आवादी कम हो और जन साधारण को भय के कारण अपने जीवन को बदलने का खयाल उत्पन्न हो। यदि मानव जाति अपने आप संभल जाय तो बहतर है अन्यथा प्रकृति स्वयं प्रबन्ध करेगी। उस सूरत में किसी न किसी रूप में विनाश होना अशक्यम्भावी है। (Destruction in any form is inevitable).

प्रश्न—यह विनाश कहाँ होगा ?

उत्तर—उत्तर की ओर अधिक, पूरव पश्चिम में उससे कम और दक्षिण की ओर बहुत ही कम होगा।

प्रश्न—ये आपने किस आधार पर कहा है ?

उत्तर—दावा किसी बात का नहीं है। केवल निज अनुभव



है। चूंकि पृथ्वी एक शरीर है, इसमें जीवन है और यह इस समय दुखी है। उसके दुख का कारण मानव जाति के दो प्रकार के विचार या संकल्प हैं:—

(१) मानव जाति के अन्दर जो इस पृथ्वी में कीटाणु की हैमियत रखती है स्वार्थ, अहंकार और लालच बढ़ गया है। विशेष रूप से जब से डेमोक्रेसी यानी प्रजातन्त्र राज्य हुआ है, क्योंकि लोगो में राजनैतिक जाग्रति के कारण यह दोष आ गया है। पहिले जनसाधारण में घरेलू रूप से यह दोष होते थे। अब प्रजातन्त्र की वजह है कि हर व्यक्ति और हर जाति इस दोष में फंस गई है। राज्य का डर भय समाप्त हो रहा है। डिसीप्लिन उठ रहा है। पहिले कुछ धर्म का डर, ईश्वर का भय और साथ ही हुकूमत का भी भय था। अब हालत बदल गई। स्त्री पुरुष का प्रेम भी केवल इन्द्रियों तक ही रह गया है। घर घर में द्वेष व घृणा अधिक हो रही है।

(२) लोगो की बुद्धि ठीक नहीं। यह सत और असत को नहीं समझ सकती है। अज्ञान छाया हुआ है। धर्मों और पंथों के आचार्य जो जनसाधारण को सद् मार्ग पर लगाने वाले थे, स्वयं दुनियादारों से भी अधिक अज्ञानी हैं और जनता को अपनी बार बरदारी का जानवर बनाये रखने के लिये गलत, रोचक और भयानक शिक्षा देते हैं।

चूंकि जो दशा मानव शरीर की है वही पृथ्वी की है, इसलिये मेरे विचार में ये ऊपर वर्णन किये गये दोष मन और मस्तिष्क से उत्पन्न होते हैं, इसलिये पृथ्वी के उत्तर और बीच के भाग के जो देश हैं उन पर इस विनाश का प्रभाव अधिक होगा। यह मेरा अनुभव है जो वर्णन कर रहा हूँ। समय बतायेगा कि अथा यह ठीक है या केवल भ्रम है।



संत मार्ग या योगिक जगत के लोग इस पृथ्वी मण्डल से ऊपर के भी लोक मानते हैं। मैं भी मानता हूँ। इन ऊपर के लोकों के प्रभाव पृथ्वी पर पड़ते हैं।

जी चाहता है कि उनके प्रभावों को वर्णन करूँ, मगर विषय लम्बा हो जायगा और विशेष व्यक्तियों के अतिरिक्त कोई समझेगा भी नहीं। साधारण लोग मम्भव है इन विचारों को भ्रम समझें मगर वास्तव में यह बात नहीं है। शास्त्रकार और संत जिन्होंने अपना जीवन इस खोज ( Research ) में बिताया है कह गये कि यह संसार मनोमय है अथवा संकल्प का है। संकल्प या मन दो तरह के हैं—(१) ब्रह्माण्डीय मन और (२) हर व्यक्ति का अलग अलग मन। हमारा व्यक्तिगत मन इस ब्रह्माण्डीय मन के आधीन है। इसलिये जो कुछ हो रहा है मेरी समझ में सब का सब ब्रह्माण्डीय मन या संकल्प के आधीन है।

प्रश्न—यदि यह ठीक है तो हमारे वश की कोई बात नहीं है। “होइ है वही जो राम रचि राखा।” और कोई उपाय करना व्यर्थ होगा। फिर आपने ‘मनुष्य बनो’ की आवाज क्यों उठाई है या दूसरे प्रयत्न क्यों करते हैं ?

उत्तर—मनुष्य के शरीर के अन्दर एक शक्ति है जिसको कोई चित शक्ति कहता है या रोग निवारक शक्ति ( Healing power ) कहता है। रोग या घाव आदि में यह शक्ति काम करती है और दवा या मरहम आदि सहायक होते हैं। इसी तरह इस पृथ्वी के लोक में अथवा अन्य लोकों में यह शक्ति मौजूद है और वह स्वयं रोग या अशान्ति के समय प्रगट होकर या शरीर में फैलकर सहायता करती है।

मैं पृथ्वी के दृष्टिकोण से इसी शक्ति को सत्गुरु की शक्ति कहता हूँ। वह समय समय पर परिस्थितियों के अनुसार



अपना हित और मत विभिन्न रूपों में देती है। वह शक्ति मौजूद तो हर समय रहती है मगर उसका प्राकृत्य दुख, आपत्ति, बिपत्ति और रोग के समय होता है। इस युग में वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार वह शक्ति मेरे दिमाग द्वारा या जैन मुनि श्री सुशील कुमार द्वारा या श्री नेहरू जैसे दिमागों द्वारा अपना काम करने के लिये विवश है। इस समय केवल भारतवर्ष ही का नहीं किन्तु समस्त भूमण्डल का कोई सहायक है तो वह केवल मजहबे इन्सानियत या मनुष्यता है।

जो जाति, जो देश, जो कुटुम्ब इस सिद्धान्त को अपनायेगा, वह बच जायेगा। याद रहे कि यह शक्ति (Healing power) (सत्गुरु) केवल मनुष्यों के लिये ही नहीं है किन्तु तमाम लोक लोकान्तरों के लिये भी काम करती है। कहीं वह गुप्त रहती है। कहीं प्रगट हो जाती है। जितना अनुभव मुझे प्राप्त हुआ उसके आधार पर आवाज उठाई है कि 'मनुष्य बनो', जीओ और जीने दो। यह आवाज इस सत्गुरु (Healing power) की है जिसके दो रूप हैं हित और मत। हित से अभिप्राय शुभ कामना से है और मत बुद्धि के ठीक करने के लिये है ताकि अक्ली दुनिया के लोग ठीक मार्ग पर आ जायें।

इस शरीर में रोग और रोग निवारक शक्ति (Healing power) दोनों साथ साथ काम करती हैं। रोगी यदि बदपरहेज है तो शायद रोग-निवारक शक्ति (Healing Power) इतना काम न कर सके, इसलिये संसार को बदपरहेज अर्थात् अविश्वासी न होना चाहिये। आशावादी होने (Optimistic)की अधिक आवश्यकता है।

प्रश्न—कोई ठोस इलाज बताइये।



उत्तर—राज्य शासन और धर्म को एक कर दिया जाये ।  
न केवल भारतवर्ष किन्तु समस्त देशों की हुकूमतों को धर्म की  
स्पष्ट व्याख्या करके बताई जाय ।

प्रश्न—धर्म से आपका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—धर्म का अमली रूप है अपने आपको जानना और  
सुख पूर्वक जीवन बिताने के तरीके पर अमल करना । इसकी  
पूरी व्याख्या मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार 'विश्व धर्म' नामी  
पुस्तक में की है जो विश्व धर्म सम्मेलन के महात्माओं के  
अरण कवलों में भेंट कर चुका हूँ ।

भविष्य में वही होगा जिससे संसार सुख का जीवन  
व्यतीत कर सके । सुख शान्ति की चाह हर एक व्यक्ति के  
अन्दर प्राकृतिक रूप से है । चूँकि ईर्ष्या, द्वेष घृणा आदि के  
विचार दुख का कारण हैं इसलिये क्रूरती तौर पर वह शक्ति  
Healing power ( सतगुरु ) ऐसा प्रबन्ध करेगी जिससे  
यह दूर हो जायें । यों तो समय पर हर प्रकार के भाव और  
विचार नाश होते हैं तथा पृथ्वी पानी हो जाती है, पानी  
पवन हो जाता है, पवन अग्नि और अग्नि आकाश में समा  
जाती है । आकाश प्रकाश में और प्रकाश शब्द में लय हो  
जाता है । आदि और अन्त एक परम तत्व है ।

परम तत्व परधान, आप आप में आप रम्य ।  
न पैदा हुआ न मरा, नहिं इसने कुछ है किया ॥  
रचना का करतार शब्द प्रकाश है जिससे आलम बना ।  
समाँ आया आप लौटा सब कुछ हो गया फना ॥

नोट—('विश्व धर्म' नामी पुस्तक 'शिव' कार्यालय अलीगढ़  
से प्राप्त हो सकती है ।)



हमने उसका किया है अनुभव देते हैं सन्देश  
अपने आपको आप जानो जगत है यह कल्पना  
इस दौर में इंसानियत ही मजहब है लो अपना  
नहीं तो अपनी आँखों से देखोगे हालत बरमला  
जो होना है सो होइ है नर रहे मौज आधीन  
इसी सार की समझ से मोहि मिली तसकीन ।

जो सज्जन प्रश्न करने वाले थे, उनका उत्तर अपन  
के अनुसार दे दिया। चूंकि वाणियों आदि से यह संस्कार  
था कि जो मनुष्य परम तत्व में लय हो सकता है उ  
सर्वाधार है मालिक है, उस मनुष्य में वही अवस्था आ ज  
इसलिये यह इच्छा अवश्य रखता हूं कि मानव जाति को श  
मिले और यह भारतवर्ष सुरक्षित रहे। यदि ऐसा हो गय  
सत वरना यह रोचक और भयानक शिक्षा साबित होगी

मानव जाति को शान्ति प्राप्त हो ।

—●—

## सूचना

अगले अंक में 'सत कबीर की शब्दावली' प्रकाशित  
का विचार है जिस में गूढ़ शब्दों की व्याख्या भी होगी  
दयाल फकीर चन्द जी महाराज के शिवरात्रि के संस्कार क  
प्रवचन होंगे, अतः प्रष्ट सख्या १८० के लगभग होगी ।  
अप्रैल और मई का एक अंक होगा । पाठक इन्तजार न